हिमांतर

अंक 11, ग्रीष्म, 2005 मूल्यः 10.00

हिमालय सम्बंधी मुद्दों पर केन्द्रित 'पहाड़' का प्रकाशन

नींव

सबने पेड़ को ऊँचाई से नापा
फुनगी तक
किसी ने जड़ों को नहीं आँका

सबने सिर उठा कर
तने, डालियों और पत्तियों की बातें कीं
और उस पर कांव कांव करने वाली
कौवों की जमात पर भी ध्यान दिया
पर किसी की नजर
अपने पांव तले की धरती पर नहीं गई
जिसके भी कहीं नीचे दबी होंगी जड़ें
नीचे, और नीचे को जाती हुई
पेड़ को और भी ऊँचा उठाने के लिए

-प्रशान्त कुमार

आशा के स्रोत

प्राकृतिक संसाधनों का सामूहिक प्रबंधन उत्तराखण्ड के ग्रामीण जीवन की विशिष्ट पहचान रही है. सामूहिकता की यही संस्कृति उत्पादन और पूँजी के इस क्रूर दौर में राज्य के उन हजारों-हजार गांवों का आत्मसम्मान और स्वावलंबन बचाए हुए है जो सरकारी और गैर सरकारी तंत्र की प्राथमिकताओं में स्थान नहीं बना पाते. प्रत्येक कार्य को आर्थिक मानदण्डों से तौलने वाली आज की यह आधुनिकता, सामूहिकता की इस लीक को निशाना तो बनाती रही है पर उसे तोड़ नहीं सकी है. बल्कि नए दौर में यह अभिनव रूपों में सामने आ रही है. प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के नाम पर चल रहे करोड़ों की लागत वाले सरकारी/गैर सरकारी तंत्र के समानान्तर सामुदायिक या व्यक्तिगत स्तर पर लोगों ने सरकारी मदद या फंडिंग के बिना अनेक ऐसे काम कर दिखाए हैं जो बजट और प्रोजेक्ट वाले तंत्र के लिए सीख का विषय बन सकते हैं. सच्चिदानंद भारती, मोहन काण्डपाल, विशेश्वरदत्त सकलानी, जगत सिंह जंगली, दामोदर सिंह राठौर, भवान सिंह अस्वाल, हर्षवन्ती बिष्ट जैसे कर्मठ कार्यकर्ता और बीज बचाओ, रक्षासूत्र तथा मैती जैसे अभियान उत्तराखण्ड जैसे सामान्य अर्थव्यवस्था वाले समाजों का स्वावलंबन बनाए रखने तथा पर्यावरण के असली संरक्षण के लिए आशा के स्रोत हैं. जरूरत इस बात की है कि बात-बात पर वैज्ञानिकों और तथाकथित विशेषज्ञों का मुँह ताकने वाले सरकारी तंत्र की आंखों में पड़े जाले हटें, और वह अपनी धरती तथा अपनी मिट्टी पर भरोसा करने वाले इस तरह के अनेक अभियानों के अनुभव और परिणामों से सीख लेकर ग्रामीण अर्थतंत्र की आत्मनिर्भरता बनाए रखने तथा पारिस्थितिक तंत्र के सुनिश्चत संरक्षण में मददगार बनें.

इन अभियानों में एक विशेष बात यह है कि सत्तर के दशक में हुए 'चिपको आन्दोलन' से ये किसी न किसी रूप में प्रभावित रहे हैं. अपने संसाधनों के प्रबंधन का अधिकार अपने हाथ में लेने की ललक के साथ शुरू हुआ 'चिपको' आज अपने मूल रूप में हमारे सामने नहीं है लेकिन चिपको की ये धाराएँ अलग-अलग रूपों में आगे बढ़ रही हैं. यद्यपि अनेक बार मीडिया में इन नयी धाराओं की चर्चा चिपको आन्दोलन की ही तरह व्यक्तिवादी नायकत्व के क्रम में होती है लेकिन ये सभी वास्तव में सामुहिकता और सामुदायिकता से परिपुष्ट

...शेष अगले पृष्ठ पर

परम्परा की धाराएँ

हिमांतर

अंक – 11, ग्रीष्म – 2005

इस अंक में

सम्पादकीय
उफरैंखाल से निकली एक गंगा
विपदाओं ने दी प्रेरणा
प्रभावित करने वाली प्रयोगधर्मिता
अपने संसाधन, अपना प्रबंधन
बीज बचाओ अभियान
जंगली का जंगल
सामुदायिक आत्म विश्वास की वापसी

हिमान्तर टीम

संपादकीय सलाह
शेखर पाठक/गिरिजा पाण्डे

संपादन
पूरन बिष्ट
आशुतोष

सम्पादकीय कार्यालय
द्वारा- 'पहाड़'
परिक्रमा, तल्ला डांडा
नैनीताल-263 002
फोनः (05942)239162
ई.मेलः parikramavaasi@hotmail.com

प्रकाशक
पहाड़
परिक्रमा, तल्ला डांडा, नैनीताल-263002

आवरण रेखाकंनः देवेन्द्र
(साभारः सफरनामा, सी.एम.जी. पौड़ी-1999)

ले-आउट डिजाइनः शब्दकार, नैनीताल
मुद्रकः अजन्ता आफसेट, नैनीताल

संपादकीय का शेषांश.....

प्रक्रियाएँ हैं. दशौली ग्राम स्वराज्य मण्डल या लक्ष्मी आश्रम द्वारा किए गए कार्यों को जरा गंभीरता से देखा जाए तो अब इन संस्थाओं से जुड़े ग्रामीण जल, जंगल, जमीन, शिक्षा, स्वास्थ, संचार आदि के साथ गांवों के समग्र तथा स्थायी विकास की बात करने लगे हैं. इसी तरह के स्वर उत्तराखण्ड सेवा निधि द्वारा वित्त पोषित अनेक संस्थाओं तथा राष्ट्रीय वृक्ष उत्पादक सहकारी समिति, मुनस्यारी; लोक विज्ञान संस्थान, देहरादून; श्री भु. म.आ., अंजनीसैण; समता, चकरौता; हार्क, देहरादून; चिराग, मुक्तेश्वर या इसी तरह की अनेक संस्थाओं के कामों से भी निकले हैं. वैसे भी नेतृत्वकारी व्यक्ति अपने समुदाय या जनता से अलग नहीं होते हैं. परिस्थितियाँ उन्हें विकसित करती हैं और वे नई परिस्थितियाँ रचते हैं. किसी भी छोटे-बड़े नायक के उसी के स्तर के उत्तराधिकारी निर्मित करने कठिन होते हैं जबकि सामुहिकता और सामुदायिकता में समाज ही वर्तमान और भविष्य होता है. इस श्रम और श्रेय की सामुहिकता में कुछ चेहरे ज्यादा स्पष्ट पहचान में आने भी स्वाभाविक हैं. आखिर समुदाय में भी नेतृत्वकारी व्यक्ति तो उभरते ही हैं और उभरेंगे भी.

उफरैंखाल में सच्चिदानन्द भारती का प्रयोग जल और जंगल के अभिन्न रिश्ते को साबित कर रहा है तो विभिन्न महिला मंगल दलों का काम, बीज बचाओ, 'मैती', रक्षा सूत्र आदि चिपको की ही प्रतिध्वनि जान पड़ते हैं और विशेश्वर दत्त सकलानी, जंगली, राठौर या हर्षवन्ती का वन संरक्षण का अनूठा प्रयोग वनों से स्थानीय समाज के लगाव का जीता-जागता उदाहरण है. दरअसल प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की स्थानीय परम्परा आज भी समाप्त नहीं हुई है. अनेक सुसंचालित वन पंचायतें इसका उदाहरण हैं, अनेक ग्राम सभाओं ने अपने नौले, धारे, बावड़ियों या गूलों तक का सफल प्रबंधन और रखरखाव किया है. अनेक 'पवित्र वन' इसीलिए आज भी जीवित हैं.

लोगों के आम जीवन में विकास के नाम पर शुरू हुए सरकारी हस्तक्षेप ने प्राकृतिक संसाधनों के सदियों से चले आ रहे साझे प्रबंधन व उपयोग की परम्परा को छिन्न-भिन्न करने में कोई कसर बाकी नहीं रखी है. रहा-बचा, देशी-विदेशी फंडिंग से संचालित होने वाले गैर सरकारी संगठनों के प्रभुत्व ने समाप्त कर दिया है. धुंध भरे इस दौर में- किस उद्देश्य के लिए कौन क्या कर रहा है? यह जानना मुश्किल हो गया है. जनजीवन की सामान्य गतिविधियाँ भी प्रोजेक्टों का विषय बन डालर आकर्षित करने का माध्यम बन गई हैं. ऐसे में यदि कोई निःस्वार्थ भाव से कुछ कहना या करना चाहता है तो उसे भी संशय से देखा जाने लगा है. शंकाओं का यह कुहासा दूर करने में उत्तराखण्ड के सैंकड़ों नाम-अनाम कर्मयोगियों की बड़ी भूमिका है जो बिना किसी स्वार्थ के अपने-अपने क्षेत्रों में लगे हुए हैं. इनके कार्य स्वैच्छिक जगत की विश्वसनीयता को बढ़ाने के अलावा उस स्वयंसेवी भावना को भी पुनर्स्थापित करने में सहायक होंगे, जो गांधीवादी और साम्यवादियों से लेकर धार्मिक तथा उदार मन लोगों ने मानवमात्र की मदद के लिए दिलों में संजोई होगी. विश्व बैंक या उसके जैसे स्वार्थों से संचालित होने वाली संस्थाओं के उस जाल को भेदने में भी यह मुहिम सफल हो सकती है जो प्रत्येक कार्य को धन के नजरिए से देखने वाली नई विश्व व्यवस्था को थोपने की नीयत से स्वयंसेवी आवरण को धारण किए हुए हैं.

पहाड़ यह महसूस करता है कि उक्त अनेक संरक्षण और परिवर्तन के सफल कार्यकलापों पर प्रारम्भिक खुशी के बावजूद अभी स्थायी गौरव महसूस करने का समय नहीं आया है. ये कुछ ही प्रयोग हैं. इन्हें बहुगुणित और स्थायी भाव की तरह उत्तराखण्ड के सामाजिक-पारिस्थितिक चेहरे में स्थापित किया जाना है. व्यक्तिगत नायकत्व का उभरना जितना अपरिहार्य है उसे सामुहिकता में विलीन करना उतना ही अनिवार्य है. फिलहाल इस अंक में दूधातोली लोक विकास संस्थान के कार्यकलापों के 25 साल पूरे होने के मौके पर कुछ स्मरणीय सामाजिक कार्यों की चर्चा की जा रही है.

●●●

उफरैंखाल से निकली एक नई गंगा

• रमेश पहाड़ी

भारत में गंगा के अवतरण की कथा जल प्रबंधन की दिशा में किए गए पुरातन प्रयासों का एक अनोखा उदाहरण प्रस्तुत करती है. सूर्यवंशी राजा सगर के 60,000 पुत्र कपिल मुनि से अभद्रता करने पर उनके शाप से भस्म हो गये थे. उनकी राख के ढेर हजारों वर्षों तक जमीन पर पड़े रहे और उनकी आत्मायें अंतरिक्ष में भटकती रह गई थीं. इन दोनों कारणों का निवारण गंगा के धरती पर अवतरण से ही हो सकता था. अतः सगर के समय से ही इसके लिये प्रयास आरम्भ हो गये थे जो तीन पीढ़ी बाद राजा भगीरथ के कार्यकाल में पूरे हो सके थे. पिछली पीढ़ियों के पाप धोने के लिये जिस गंगा को प्रकट करने का श्रेय राजा भगीरथ को मिला, वह लाखों-करोड़ों स्रोतों से फूट कर अस्तित्व में आई थी. ये स्रोत अब कमजोर पड़ते जा रहे हैं जिन्हें बचाने के लिये भगीरथ जैसा ही बड़ा और व्यापक प्रयास किए बिना गंगा को बचाये रखना शायद संभव नहीं होगा.

उत्तराखण्ड में इस दिशा में एक अभिनव एवं सुगठित प्रयास शुरू किया है सच्चिदानंद भारती ने. यह प्रयास अपने प्रारम्भिक दौर में देखने में छोटा जरूर लगता है लेकिन जल जैसे जीवन के लिये अनिवार्य संसाधन के स्रोतों को जीवित रखने और उन्हें बढ़ाने के लिये है बहुत महत्वपूर्ण. पूर्णतः प्राकृतिक यह तकनीक पर्वतीय जल-चक्र के सर्वथा अनुकूल है, इसलिये इसकी सफलता अन्य तकनीकों की अपेक्षा कहीं अधिक हो सकती है.

एक नई गंगा उतरी धरती पर

वर्षा के जल को अनियंत्रित होकर विनाशकारी रूप में बहने देने की बजाय उसे इस तरह रोक कर कि वह दौड़ने की बजाय चलना, चलने की बजाय बैठना और बैठने की बजाय धरती में रुक कर और रिस कर अपनी उपयोगिता को कई गुना बढ़ा दे, इस तकनीक को एक स्वैच्छिक संस्था दूधातोली लोक विकास संस्थान ने सच्चिदानंद भारती के नेतृत्व में विकसित किया है. सच्चिदानंद भारती इस संस्थान के संस्थापक और प्रमुख संचालक हैं. इस अभिनव तकनीक के कुछ ही वर्षों के प्रयास से एक सूखे नाले को सदानीरा बनाकर एक नई गंगा को धरती पर उतार दिया है जिसका नाम है-गाड गंगा. इस सफलता ने इस क्षेत्र के दर्जनों गांवों के निवासियों के साथ ही जल पर कार्य कर रहे संगठनों तथा जल समस्या का समाधान तलाशने में जुटे विज्ञानियों और विचारकों में एक नई आशा जगाई है. इस तकनीक का फैलाव निकटवर्ती गांवों में हो रहा है और जैसे-जैसे इसका फैलाव होता जायेगा, ऐसी अनेक गंगाओं का जन्म होता चला जायेगा. इससे पर्वतीय क्षेत्रों में न केवल बढ़ते जल संकट का आसानी से मुकाबला हो पायेगा, बल्कि वर्षा जनित विनाश पर भी प्रभावी रोक लग पायेगी और प्रकृति के विभिन्न घटकों जैसे भूमि, वृक्ष, वनस्पति, वन्य जीवों व जन के बीच एक अर्थपूर्ण सामंजस्य स्थापित हो जायेगा.

दूधातोली लोक विकास संस्थान मध्य हिमालय में स्थित उत्तराखण्ड के पौड़ी, चमोली और अल्मोड़ा जिले में मध्य में एक बहुत पिछड़े इलाके उफरैंखाल में स्थित है. इसके संस्थापक सच्चिदानंद भारती चिपको आंदोलन में काफी सक्रियता से जुड़े रहे थे. अपने गृह क्षेत्र में अध्यापक बन कर आने के बाद उन्होंने स्थानीय लोगों, विशेषकर महिलाओं को, सक्रिय और संगठित करके वनों को बचाने के कार्यों में लगाया और वन विभाग द्वारा नीलाम पेड़ों को बचाने के लिये अनेक सफल आंदोलन चलाये. फिर उफरैंखाल क्षेत्र को हरियाली से पाटने का कार्यक्रम बनाया. इस कार्य में उत्तराखंड सेवा निधि ने सहारा दिया.

नये प्रयोग ने दिखाई राह

उफरैंखाल के गाड खर्क जंगल में कुछ झाड़ियां और कुछ छितरे पेड़ थे जो अनियंत्रित चराई तथा पानी के अभाव के कारण लगातार घटते जा रहे थे. इसलिये सबसे पहले यहां वनीकरण की योजना बनी. जिस दौर में यह कार्य हो रहा था, उस दौर में 1987 का वर्ष भी आया जो सबसे सूखे वाला वर्ष था. लगाये गये पौधों में से ज्यादातर बिना पानी के सूख कर मरने लगे थे. इस पर चिंता के साथ चिंतन भी हुआ और इससे उबरने के लिये एक उपाय ढूँढ निकाला गया. रोपे गये पौधे के समीप एक गड्ढा बनाया गया जिसमें वर्षा का पानी जमा होता और कुछ अधिक दिनों तक पौधे को नमी देता रहता. यह तरकीब काफी कारगर रही. इससे गाड खर्क का जंगल बढ़ने लगा.

1990-91 आने-आने तक गाड खर्क जंगल हरा-भरा हो गया. अब एक दशक बाद वह एक पूर्ण विकसित वन के रूप में है जिसमें, बांज, बुरांस, काफल, अयांर, चीड़, उतीस आदि स्थानीय प्रजातियों के अलावा देवदार के पेड़ तथा अनेक किस्मों की घासें हैं. प्रकृति ने भी इस प्रयास में हाथ खोल कर मदद की है और अब गाड खर्क का बंजर गाड खर्क वन के रूप में सिर उठाये खड़ा है. आज कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि गाड खर्क का यह जंगल 15-16 वर्ष पहले इक्का-दुक्का पेड़ों और कुछ छितरी झाड़ियों वाला एक बंजर भू-भाग रहा होगा.

छोटे-छोटे गड्ढों से पौधों को अधिक समय तक नमी मिलने से उत्साहित भारती ने तालाबों की परम्परा तथा उनकी व्यवस्था का अध्ययन करने के बाद उफरैंखाल में जल तलाइयों के निर्माण की योजना अपने कार्यकर्ताओं के साथ बनाई. स्थानीय लोगों को संगठित कर गाड खर्क में श्रमदान से जल तलाइयों का निर्माण आरम्भ हुआ और देखते ही देखते डेढ़ हजार तलाइयां तैयार हो गईं. ये तलाइयां आकार और अभियंत्रण की औपचारिकताओं से एकदम मुक्त हैं. इनमें कोई बाहरी सामग्री नहीं लगाई गई. जहां ठीक-ठाक ढाल देखा,

वहीं पर खुदाई करके 'तलाई' बना दी. खोदी गई मिट्टी से मेढ़ ऊंची कर दी और उस पर पेड़ तथा दूबड़ घास लगा दी.

इन तलाइयों में पहाड़ी के शिखर से ही वर्षा जल का संग्रहण आरम्भ हो जाता है और उनका पानी निचली तलाइयों से रिसता हुआ नालों में पहुंचता है. नालों में ज्यादा पानी संग्रहीत हो, इसके लिये पत्थर और सीमेंट के कुछ बंधे भी बनाये गये हैं. इन तलाइयों और बंधों में पानी जमा होता और रिसता रहता है तथा एक जल-चक्र अपनी गति से चलता रहता है. जल तलाइयों में 3-4 माह तक पानी रहता है और नमी तो सभी तलाइयों के आसपास प्रचुर मात्रा में रहती है जिससे गाड खर्क वन का जीवन पूरी तरह जीवंत बना रहता है और अवर्षण के लम्बे काल खंड भी उसके माथे पर सलवटें डालने में सफल नहीं हो पाते.

व्यवहार में उतारा विज्ञान

पानी के साथ वन अभिन्न रूप से जुड़ा है. वन पानी के संग्राहक, जलवायु के नियंत्रक और मिट्टी के संरक्षक होते हैं. लेकिन वन पानी के बिना नहीं बढ़ सकते. वन के साथ एक पूरा जैविक संसार होता है जो जल और मिट्टी पर आश्रित है. इसलिये जल, मिट्टी और वन इन तीन प्राकृतिक घटकों को एक-दूसरे के बिना नहीं समझा जा सकता. भारती तथा उफरैंखाल क्षेत्र के लोगों ने इस व्यावहारिक विज्ञान को न केवल समझा है बल्कि व्यवहार में उतारा भी है. वनों के लिये पानी और मिट्टी चाहिए. पानी के लिये समृद्ध वन और सुरक्षित जमीन चाहिए. इसलिये वन के संरक्षण-संवर्द्धन के लिये पानी और मिट्टी के संरक्षण का भी उपाय किया गया. दू.लो.वि.सं. ने गाड खर्क के वन को इस संरक्षणत्रयी का अभिनव केन्द्र बनाया. वहां वन है जो पानी का संग्रहण करता है. वर्षा के पानी के तीव्र प्रवाह से धरती का, मिट्टी का तेज क्षरण होता था, उसे तलाइयां बनाकर नियंत्रित करने के साथ ही इन तलाइयों में जल का संग्रह होता है. ये वर्षा के बाद अपने बूंद-बूंद के रिसाव के द्वारा जल वाहिकाओं को जल प्रदान करती है. साथ ही लम्बे समय तक नमी के संरक्षण के द्वारा वृक्षों-वनस्पतियों का पोषण करती है. तलाइयों के किनारे नये पौधों और घासों के रोपण के द्वारा ईंधन और चारे की समस्या का समाधान हुआ है. इस प्रकार वन-विज्ञान के व्यावहारिक पक्ष को जल संग्रहण व मृदा क्षरण के नियंत्रण के द्वारा व्यवहार में उतार कर दिखाया गया है.

मध्य हिमालय क्षेत्र में वर्षा काफी होती है और ऊबड़-खाबड़ भूमि भी पर्याप्त मात्रा में है. यह भूमि प्राय: बंजर है जिसमें घास और वनस्पतियों की उत्पादकता का स्तर अत्यंत निम्न है. ऐसी सामान्यत: 40-45 अंश ढाल तक की बेकार पड़ी भूमि को जल तलाइयां बनाकर जल के उत्पादक कारक के रूप में उपयोगी बनाया जाना कई अर्थों में लाभकारी है. वर्षा के जल तथा नमी के संग्रहण के साथ-साथ तलाइयों की मेढ़ों पर रोपे गये पौधे तथा घासें पर्याप्त नमी के कारण तेजी से बढ़ते हैं जिससे वनीकरण एवं घास रोपण का जीवित प्रतिशत काफी ऊंचा रहता है और वनावरण तेजी से बनता व बढ़ता है. साथ ही वनों की उत्पादकता भी बढ़ती है. वनों में हरियाली तथा जल की उपलब्धता के कारण वनाग्नि की घटनायें कम होती हैं और कभी आग लग भी जाये तो उसे जल तलाइयों में उपलब्ध जल से नियंत्रित करना आसान हो जाता है. दूधातोली लोक विकास संस्थान ने इसे कार्य रूप में परिणित करके दिखाया भी है.

जल तलाइयों के इस प्रयोग ने पर्वतीय क्षेत्रों में तेजी से बह जाने वाले वर्षा-जल को रोक कर जमा करने के साथ ही भूक्षरण और भूस्खलन को कम कर मिट्टी के संरक्षण का मार्ग प्रशस्त किया है तथा वनावरण को तेजी से बढ़ाने में सहायता कर जैव सम्पदा में वृद्धि के अलावा आग से वनों को होने वाले नुकसान को कम करने जैसी अनेक समस्याओं का एक साथ समाधान ढूँढ निकाला है. इस प्रकार यह एक बहुमुखी और बहु लाभदायी कार्यक्रम है. इसके द्वारा पर्वतीय क्षेत्रों में जल, जंगल और जमीन संबंधी समस्याओं का एक साथ कारगर समाधान निकाला जा सकता है.

भरपूर, वर्षा के बाद भी हिमालयी क्षेत्र बरसात के तुरंत बाद से ही जल के संकट से जूझने को विवश है. वनों की कमी तथा जल संग्रहण परम्पराओं के ह्रास के कारण वर्षा का ज्यादातर पानी सीधे ही बह जाता है. वह पर्वतीय पारिस्थितिकीय तंत्र के काम नहीं आ पाता. यही बरसाती पानी अनियंत्रित बह कर भूक्षरण और बाढ़ के द्वारा अनेकों संकट पैदा करता रहता है. यदि वर्षा के पानी को आंशिक रूप से भी संग्रहीत कर लिया जाये तो उससे स्थानीय स्तर पर जल की कमी का सामना किया जा सकता है. वर्षा जल संग्रहण के अनेक प्रयोग हो रहे हैं लेकिन दू.लो.वि.सं. ने ताल-तलाइयों वाला जो प्रयोग किया है, वह प्राकृतिक जल-चक्र की पुनर्स्थापना की दिशा में कारगर कदम है. इस कदम ने जन-साधारण को पानी के उत्पादक की भूमिका में स्थापित किया है.

अभी तक जल प्रबंधन के तमाम प्रयास उपलब्ध जल के उपयोग तक सीमित रहे हैं. जल के विविध उपयोगों के लिये राष्ट्रीय स्तर से लेकर ग्रामीण स्तर तक जितने विभाग बने हुये हैं, वे उपलब्ध जल भण्डारों के उपयोग के विभिन्न क्रियाकलापों तक सीमित हैं. इन क्रियाकलापों में जल की उत्पादकता बढ़ाने की दृष्टि कहीं नहीं है. समीपवर्ती स्रोत कम पड़ गया तो दूर के स्रोत जोड़ लो. ऊपरी हिस्सों के स्रोत कम पड़ गये तो पंपों से पानी उठाओ. भूजल के भण्डार रीतते जा रहे हों तो और गहरे खोदो. नदियों को जोड़ने की बात भी हो रही है. यही हमारा जल प्रबंधन है और यही जल अभियंत्रण. मौजूदा जल-स्रोतों की उत्पादकता बढ़ाने और वर्षा के रूप में जो अथाह पानी गिरता है, उसका उपयोग करने के लिये नियोजन के स्तर पर भी कोई गंभीर प्रयास नहीं हो रहे हैं. सच्चिदानंद भारती के कार्यों ने इसी कमजोर नब्ज को पकड़ा है. जल तलाइयों के सफल प्रयोग के बाद जल प्रबंधकों, विचारकों और योजनाकारों को एक नई दृष्टि और कार्यक्रम मिल गया है- वर्षा जल की प्राकृतिक खेती व पानी ही नहीं, जंगल और जमीन के बेहतर प्रबंधन के सूत्र भी इससे प्रकट हुये हैं.

वर्षा की खेती

'पानी को पैदा किया जा सकता है क्या?'- यह सवाल अब अनुत्तरित नहीं रह गया है. भारत जैसे प्रचुर वर्षा वाले भूभाग में वर्षा की खेती कर अच्छी फसल काटी जा सकती है. उफरैंखाल के नमूने से तो बहुत ज्यादा और सस्ती भी. परंतु इसके लिये उफरैंखाल जाना होगा और भारती व उनसे जुड़े असंख्य ग्रामीणों के कार्यक्रम को समझना होगा.

दिल्ली स्थित पर्यावरण एवं विज्ञान केन्द्र के अनिल अग्रवाल (अब स्वर्गीय) तथा सुनीता नारायण, गांधी शांति प्रतिष्ठान के अनुपम

मिश्र, देहरादून स्थित लोक विज्ञान संस्थान के डॉ. रवि चोपड़ा, अल्मोड़ा स्थित उत्तराखण्ड सेवा निधि के डॉ. ललित पाण्डेय आदि वर्षा की खेती और पानी के बेहतर उपयोग की आवश्यकता कई वर्षों पहले से बता रहे हैं. मिरतोला आश्रम (अल्मोड़ा) में ढाई दशक पहले से वर्षा जल के संग्रहण के द्वारा स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति का सफल प्रयोग चल रहा है. राजस्थान में राजेन्द्र सिंह तथा महाराष्ट्र में अण्णा हजारे के नेतृत्व में वर्षा जल के संग्रहण और उपयोग के प्रयोग बहुत सफल रहे हैं. सच्चिदानंद भारती के नेतृत्व में दू.लो.वि.सं. ने जल तलाइयों के द्वारा सम्पूर्ण पर्वतीय पारितंत्र के संरक्षण एवं सम्वर्द्धन का मार्ग ढूँढ निकाला है. इसे जल विज्ञानियों और विचारकों ने एक अभिनव प्रयोग के रूप में स्वीकार किया है. अब यह योजनाकारों और जल प्रबंधकों पर है कि वे इस प्रयोग को कितना अधिक विस्तार दे पाते हैं?

जनता को जोड़ने का ताना-बाना

हमारे योजनाकार, योजनाओं की असफलता पर यह कहते थकते नहीं हैं कि इन योजनाओं में जन पक्ष की अनदेखी होती रही है. अब जन-भागीदारी द्वारा योजनाओं की सफलता की बात हो रही है. प्रयोगों और अनुभवों की आग में तप कर ढले सच्चिदानंद भारती जन-भागीदारी के नारे से आगे बढ़ कर जन-कार्यक्रम के रूप में यह अभियान आगे बढ़ा रहे हैं. जल, जंगल, जमीन पर्वतीय समाज के अस्तित्व से जुड़े हैं. इन आधारभूत संसाधनों का संरक्षण, विकास और उपयोग कैसे करना है, यह ग्रामीणों से ज्यादा अच्छे ढंग से कोई और नहीं जानता. इसलिये भारती ने लोगों को, मुख्यतः महिलाओं को, उनके ज्ञान, परम्पराओं और शक्ति के साथ अपना कार्यक्रम बनाकर आगे बढ़ने के लिये प्रेरित किया तथा इसके लिये बुनियादी सुविधायें उपलब्ध कराईं. इसी का परिणाम है कि जल तलाइयों के साथ जंगल भी बने और उनकी उत्पादकता भी बढ़ी है. इसके साथ ही लकड़ी और घास-चारे की उपलब्धता बढ़ी है और खेती की दशा भी सुधरी है. पानी की उपलब्धता के बाद जब उन्नत खेती के प्रयोग किये जाने लगे हैं.

ग्रामीणों को खेती के लिये पानी, घास-चारे और ईंधन के लिये अपना जंगल मिल गया और वह भी उनकी अपनी कोशिश और मेहनत से, तो वे कार्यक्रम से जुड़ेंगे ही. यही कारण है कि उफरैंखाल में गाड खर्क जंगल से जले एक दीपक ने अल्प अवधि में ही 3 दर्जन गांवों में उजाला फैला दिया है. इन गांवों के लोगों ने गांवों में बंजर भूमि, पानी की कमी से उजड़ गए खेतों और वन क्षेत्रों में खाली पड़ी जमीनों पर हजारों तलाइयां बना दी हैं. इससे पानी के संग्रहण के साथ जंगलों की सघनता तथा खेतों की उत्पादकता बढ़ी है. जल-तलाइयों के निर्माण और जंगल की सुरक्षा के इस लोक-प्रणीत अभियान में हर व्यक्ति का महत्व है. इसीलिये इसका अर्थ-शास्त्र और समाज-शास्त्र भी अनोखा तथा अनुकरणीय है. सामान्यतः 5 घनमीटर की तलाई बनाने तथा उसकी मेढ़ पर 5 पौधे रोपने का पारिश्रमिक 50 रु. तय है. यह लोगों ने स्वयं तय किया है. किसी को कुछ कहने-सुनने की जरूरत ही नहीं है.

इसी प्रकार जंगल की देखभाल के लिये भी एक अभिनव तरीका अपनाया गया है. एक लाठी होती है जिसके ऊपरी हिस्से पर 3 खांकर (बड़े घुंघरू) बंधे रहते हैं. दिन भर जंगल की चौकीदारी कर चुकी महिला या पुरुष शाम को उस खांकर वाली लाठी को अगली बारी वाले घर के दरवाजे पर रख देते हैं और वह अगली बारी वाले दरवाजे पर. यह क्रम लगातार चलता रहता है. किसी को कुछ कहने की जरूरत नहीं, सबको अपनी जिम्मेदारी का ज्ञान रहता है. ठीक उसी तरह जैसे कभी लठ्ठ पंचायतें चला करती थीं.

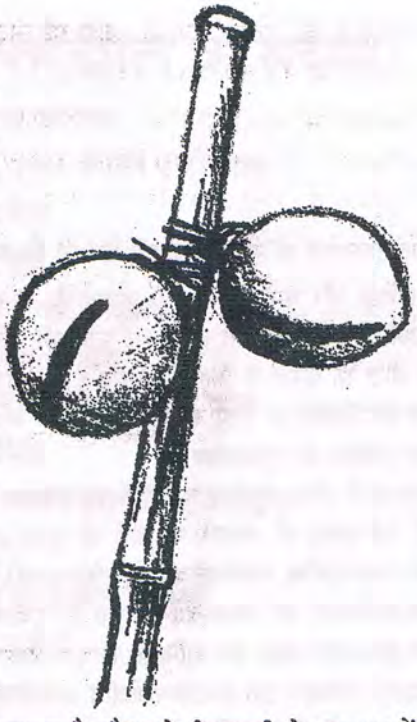

ताल-तलाइयों की संरचना सीखने के साथ सामाजिकता के इस ताने-बाने को सीखने-समझने की भी जरूरत है और उसे ईमानदारी से व्यवहार में उतारने की भी. इसकी भी पहल हो चली है. अनेक राजनीतिक एवं सामाजिक लोगों के अलावा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रमुख कुप. सी. सुदर्शन गाड गंगा के भगीरथ भारती के प्रयासों को देखने उफरैंखाल पहुंच कर इस कार्य की प्रशंसा कर चुके हैं. अनेक विज्ञानी एवं विचारक उफरैंखाल पहुंच कर इस अभिनव तकनीक से प्रभावित हुये हैं. उत्तराखंड सेवा निधि, गांधी शांति प्रतिष्ठान, पर्यावरण एवं विज्ञान केन्द्र आदि प्रमुख संस्थान इस अभियान के प्रसार में जुटे हैं. लोक विज्ञान संस्थान, देहरादून ने इस तकनीक को अपने जलागम प्रशिक्षण का एक अंग बनाया है. प्रशिक्षुओं को उफरैंखाल ले जाकर दू.लो.वि. सं. के कार्यों को दिखाया जा रहा है. इससे प्रेरित होकर अनेक क्षेत्रों में लोगों द्वारा ताल-तलाइयां बना कर वर्षा के पानी के अनियंत्रित बहाव को रोका जाने लगा है. उत्तराखंड में पौड़ी जिले के कल्जीखाल विकास खण्ड और हिमाचल प्रदेश में हमीरपुर जिले में इस तकनीक के प्रसार से जल का संग्रहण होने लगा है. इसका लाभ निचले क्षेत्रों में स्थित स्रोतों तथा सूखे नालों में पानी की अधिक लम्बे समय तक उपलब्धता के रूप में मिल रहा है. ताल-तलाइयों की यह तकनीक जितनी फैलेगी, भूजल के भण्डार और नदियां उतनी ही समृद्ध होंगी.

भागीरथी गंगा का अवतरण सगर-पुत्रों के उद्धार के सीमित उद्देश्य से हुआ था. भले ही गंगा इससे अरबों-खरबों गुना बड़े उद्देश्यों की पूर्ति कर रही है तथा त्रैलोक्य तारिणी बन कर प्रत्येक प्राणी का उद्धार कर रही है जबकि गाड गंगा अनेक बड़ी समस्याओं के समाधान के सूत्र के रूप में लोक-पुरुषार्थ के द्वारा अवतरित हुई है. इसके उद्देश्य भी असीमित हैं- सूखते स्रोतों को पुनर्जीवित कर गंगाओं का अस्तित्व बनाये रखना और लोक पुरुषार्थ को नये संदर्भ तथा नये अर्थ प्रदान करना. इसलिए भगीरथ के प्रयास से भारती का प्रयास कुछ अधिक अर्थपूर्ण है.

(लेखक चिपको के सक्रिय कार्यकर्ता, पत्रकार तथा 'अनिकेत साप्ताहिक के संपादक हैं.)

विपदाओं ने दी प्रेरणा

○ सच्चिदानन्द भारती

गढ़वाल हिमालय के सुदूर सीमावर्ती क्षेत्र जो कि जनपद की सीमाओं को अल्मोड़ा और चमोली जिलों से जोड़ता है, के सुन्दर रमणीय पर्वत श्रृंखलाओं के मध्य लगभग छः हजार फीट की ऊँचाई पर ऊफरैखाल नामक छोटा सा कस्बा है. यहीं पर स्थित है, पर्वतीय क्षेत्रों में पर्यावरण संरक्षण एवं विकास के लिए समर्पित रचनात्मक संस्था दूधातोली लोक विकास संस्थान का मुख्यालय.

दूधातोली लोक विकास की विधिवत् स्थापना सन् 1980 में की गई थी. इस संस्था की स्थापना के पीछे जो मुख्य उद्देश्य रहा है, वह क्षेत्र के पर्यावरणीय पारस्थितिकी में संतुलन को कायम रखते हुए विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करना है. दूधातोली लोक विकास संस्थान द्वारा अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अथक परिश्रम किया गया. इस दिशा में संस्थान द्वारा सर्वप्रथम क्षेत्रीय समस्याओं के अध्ययन हेतु लंबी पदयात्राओं, शिक्षण शिविरों का आयोजन किया गया. साथ ही निकटवर्ती गांवों में महिला मंगल दलों की स्थापना भी की गई. संस्थान द्वारा 'शुभारम्भ' के प्रतीक रूप में कुछ गांवों में वहां की मुख्य समस्याओं के निराकरण हेतु प्रत्यक्ष पहल शुरू की गई.

दूधातोली वन माला के चारों ओर आज भी अच्छे सघन वन हैं. जिनमें बड़ी संख्या में हिरन, सुअर, साही, बारहसिंघा, भालू, बाघ आदि वन्य जीव सुरक्षित हैं. सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में दूधातोली ही एकमात्र ऐसा पर्वतीय वन माना जाता है, जहां कि कार्बेट नेशनल पार्क की भांति शेर की उपस्थिति देखी गई है.

दूसरी ओर इस वन माला के चारों ओर जनपद गढ़वाल के क्षेत्र थलीसैंण, पाबौं व खिर्सू तथा जनपद चमोली के क्षेत्र गैरसैंण व कर्णप्रयाग तथा जनपद अल्मोड़ा के क्षेत्र स्याल्दे के विभिन्न गांवों की लगभग एक लाख से अधिक आबादी रहती है.

इन लोगों को जहां वर्षों से निकटवर्ती जंगलों से अपनी आजीविका के विभिन्न साधन प्राप्त होते रहे हैं. वहीं कई कठिनाइयाँ भी शुरू से रहीं हैं. लेकिन प्राचीन समय में तब केवल पशुपालन ही इन गांवों का मुख्य व्यवसाय था, और यहां खेती बहुत कम की जाती रही थी. घी, दूध की अपार मात्रा रहती थी. इसीलिए इसे लोग 'दूधातोली' अर्थात् (दूध का घर) कहते थे.

समय परितवर्तनशील है, जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती गई तो लोगों को खेती की अधिक आवश्यकता होने लगी और नजदीक के जंगल घर बाड़ खेत खलिहानों में बदलने लगे दूसरी ओर देश में भी लकड़ी जबरदस्त मांग के कारण सदा हरे रहने वाले वन भी वीरान बन कर रह गये. दूधातोली भी इससे अछूता न रहा. और सन् 1980 तक इसके प्रत्येक भाग में रागा, खरसू, चमखड़ों, पांगर, बांण अदि वृक्षों का भारी मात्रा में पातन होता रहा है. जिससे रामगंगा और नयार जैसी जीवदायिनी नदियों का जलस्तर तो गिरा ही उनमें बाढ़ें भी आने लगी. सम्वत् 2022 में नयार नदी में सरकारी अवैध कटान के कारण ही विनाशकारी बाढ़ आई थी, जिसमें सतपुली में-बाईस मोटर बह गये थे. कई पुल स्वाहा हो गये थे और कई लोगों की जानें गयी थी. उसके बाद बेलाकूचीं तथा भागीरथी की बाढ़ मनुष्य द्वारा हिमालयी क्षेत्र में की गई छेड़छाड़ के कारण आने वाली विपदाओं के बोल बन गये हैं.

वनों में हुए इस ह्रास के कारण दूधातोली के चारों ओर इसे लगभग बीस हजार से अधिक परिवारों का जीवन भी सीधा प्रभावित हुआ है. पशुपालन का व्यवसाय मुख्य साधन न रहा. खेती बाड़ी पर लोग निर्भर होने लगे. लेकिन अब खेती सुरक्षित न रही थी. क्योंकि नजदीक के वनों से वन्य जन्तु बड़ी संख्या में आकर फसल चौपट कर देते हैं. वनों के नजदीक रहने वाले सभी गांवों में जंगली जानवरों की समस्या आज भी बनी हुई है.

अध्ययन से यह बात सामने आई कि जंगलों के नजदीक बसे पर्वतीय गांव जो कभी किसी समस्या से ग्रस्त नहीं थे, आज सर्वाधिक कठिनाइयों भरा जीवन जी रहे हैं. जंगलों के साथ-साथ जंगली जानवरों, ग्रामीणों की खेती आदि कुछ भी सुरक्षित नहीं है और एक बड़ा पर्यावरणीय-पारिस्थितिकीय संकट इन क्षेत्रों में उत्पन्न हुआ है.

उक्त समस्याओं के निदान के लिए मेरे द्वारा ग्रामीणों से बातचीत करके एक बहुआयामी कार्यक्रम की शुरुआत की गई. जिसके अन्तर्गत ग्रामीणों की फसल सुरक्षा, वन सुरक्षा, वन्य जीवों की सुरक्षा के साथ तात्कालिक एवं दीर्घकालिक आर्थिक उन्नयन के साधन तैयार किये गये. इसके लिए निर्णय लिया गया कि गांव के खेतों की आखिरी सीमा में खेतों से लगभग सौ से दो सौ मीटर दूर बंजर भूमि में लगभग छः फुट ऊँची पत्थरों की सुरक्षा दीवार बनाई जाय. खेत तथा दीवार के बीच में स्थित बंजर भूमि में अखरोट की फल पौधों के रोपण का निर्णय लिया गया. अखरोट ही इसलिए क्योंकि अखरोट के फलों को कोई भी चिड़िया या वन्य जीव नहीं खाता है और यह लम्बी उम्र तक फल देता है. इसके फलों को तुरन्त सड़ने का कोई खतरा न होने से उसकी बिक्री की भी कोई समस्या नहीं रहती है. प्रयोग के बतौर सर्वप्रथम दूधातोली के एकदम पास बसे ग्राम देहा में लगभग छः किलोमीटर लम्बी दीवाल बनाई गई. जिससे वहां के पैंतालीस परिवारों की लगभग चार सौ हैक्टेयर फसली भूमि की सुरक्षा हुई. दो लाख से अधिक पेड़ों का बांज, तिलोंज वन एवं चार हजार अखरोट के पेड़ों का बाग तैयार हुआ है. इस कार्य के फलस्वरूप वहां चारा घास की उत्पादकता भी बढ़ी है जिससे गांव के दुधारू पशुओं की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई है. लोगों में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकीय संतुलन के प्रति नई समझ पैदा हुई है. ऐसा ही कार्य ग्राम सुन्दरगांव तथा देवराड़ी में भी किया गया है.

वन-रोपण कार्य

संस्थान ने गांवों के नजदीक बेकार पड़ी खाली बंजर भूमि को वन-रोपण द्वारा हरा-भरा बनाने के कार्य को मुख्य ध्येय रूप में लिया है. जिससे गांव वासियों को नजदीक से नजदीक घास लकड़ी मिल सके और महिलाओं के सिर बंधा पीट के बोझ का दर्द कम हो सके. अब तक ग्राम कफलगांव, उफरैंखाल, स्यूँसाल, भरनो, मनियारगांव, जन्दरिया तल्ला, चौड़ा देवराड़ी,

दूधातोली लोक विकास संस्थान, उफरैंखाल के सदस्य

1. सच्चिदानन्द भारती
स्थान व पोस्ट उफरैंखाल
जिला पौड़ी गढ़वाल

2. केशर सिंह रावत
प्रवक्ता नागरिक शास्त्र
इण्टर कालेज, उफरैंखाल
जिला पौड़ी गढ़वाल

3. डा. दिनेश ढौंडियाल
ग्राम डांडखिल, पो. गाडखर्क
जिला पौड़ी गढ़वाल

4. डा. वीरेन्द्र सिंह रावत
नवभारत एजुकेशनल स्टोर
बैजरो, जिला पौड़ी गढ़वाल

5. विक्रम सिंह नेगी
ग्राम डुलमोट, ढौंडियालस्यूँ
जिला पौड़ी गढ़वाल

6. महेश पंचोली
ग्राम विकास अधिकारी
उफरैंखाल, जिला पौड़ी गढ़वाल

7. दीनदयाल ढौडियाल
ग्राम भराड़ीधार, पो. बुढ़ाकोट
जिला पौड़ी गढ़वाल

8. बलदेव जोशी
ग्राम व पोस्ट बुढ़ाकोट
जिला पौड़ी गढ़वाल

9. हर सिंह वणस्वाल
ग्राम भैड़गांव मल्ला
पो. उफरैंखाल, जिला पौड़ी गढ़वाल

10. जगत सिंह 'जोगी'
ग्राम ओखल्यूँ, पो. उफरैंखाल
जिला पौड़ी गढ़वाल

11. उदय सिंह रावत
कश्मीरी होटल, उफरैंखाल
जिला पौड़ी गढ़वाल

12. विशन सिंह ठेकेदार
ग्राम कुंदनपुर, पो. उफरैंखाल
जिला पौड़ी गढ़वाल

13. गिरीश चन्द्र वशिष्ठ
प्रवक्ता अंग्रेजी, इण्टर कालेज उफरैंखाल
जिला पौड़ी गढ़वाल

14. राम सिंह नेगी
ग्राम भतपौं, जिला पौड़ी गढ़वाल

15. पंडित विवेक लखेड़ा
हषोगी माता मंदिर, मंडी, हिमाचल प्रदेश

16. जसवन्त सिंह
प्रधानाचार्य, सरस्वती शिशु मंदिर, उफरैंखाल
जिला पौड़ी गढ़वाल

17. रमेश चन्द्र ढौडियाल 'शास्त्री'
ग्राम व पोस्ट गाडखर्क
जिला पौड़ी गढ़वाल

18. तोता राम ढौंडियाल
प्रधानाचार्य, इण्टर कालेज उफरैंखाल
जिला पौड़ी गढ़वाल

19. दीवान सिंह
ग्राम मनियार गांव (चौथान)
पो. बसोला
जिला पौड़ी गढ़वाल

20. भगवती प्रसाद जोशी
ग्राम मनियार गांव (चौथान)
पो. बसोला
जिला पौड़ी गढ़वाल

21. मोहन सिंह गुसाईं
ग्राम व पोस्ट भरनौ
जिला पौड़ी गढ़वाल

22. रणवीर सिंह गुसाईं
ग्राम व पोस्ट भरनौ
जिला पौड़ी गढ़वाल

23. शम्भू प्रसाद पंचोली
ग्राम व पोस्ट भरनौ
जिला पौड़ी गढ़वाल

24. गोविन्द राम पंचोली
ग्राम व पोस्ट भरनौ, जिला पौड़ी गढ़वाल

25. लखन सिंह, पोस्ट मास्टर
ग्राम व पोस्ट भरनौ, जिला पौड़ी गढ़वाल

26. उदय सिंह नेगी
ग्राम व पोस्ट भरनौ
जिला पौड़ी गढ़वाल

27. हंसा दत्त रतूड़ी
ग्राम काण्डई (चौथान)
जिला पौड़ी गढ़वाल

28. राजेन्द्र सिंह भण्डारी (पधान)
ग्राम काण्डई (चौथान)
जिला पौड़ी गढ़वाल

29. दिलवर सिंह चंद
पूर्व प्रधानाध्यापक, भरनौ
जिला पौड़ी गढ़वाल

30. भवान सिंह रमोला (पधान)
ग्राम भैड़गांव मल्ला
जिला पौड़ी गढ़वाल

31. टीका राम जुयाल
ग्राम डांडखिल (चौथान), जिला पौड़ी गढ़वाल

32. केशर सिंह, दूकानदार
आंखोडबाखली (कफलगांव तल्ला)
जिला पौड़ी गढ़वाल

33. बेलम सिंह
ग्राम टेवलिया पो. मासौं (चौथान)
जिला पौड़ी गढ़वाल

34. भूपाल सिंह हवलदार
ग्राम जन्दरिया मल्ला, पो. मासौं (चौथान)
जिला पौड़ी गढ़वाल

35. बुद्धि सिंह, पूर्व प्रधान
भैड़गांव तल्ला (चौथान)
जिला पौड़ी गढ़वाल

36. गिरीश चन्द्र रतूड़ी
ग्राम काण्डई, पो. बूंगीधार जिला पौड़ी गढ़वाल

37. भवानी दत्त खंकरियाल
पूर्व प्रधान, सुन्दरगांव

38. ठाकुर सिंह जैंतवाल
ग्राम जैंती, पो. जैंती डांग (चौथान)
पौड़ी गढ़वाल

39. शेर सिंह
ग्राम सकन्याणी (चौथान)
जिला पौड़ी गढ़वाल

40. सोहनलाल
प्र.अ. -गाडखर्क
जिला पौड़ी गढ़वाल

41. देवेन्द्र बिष्ट, प्रधान
ग्राम-बंगार
जिला पौड़ी गढ़वाल

42. धनन्जय ढौंडियाल
देहरादून

43. गबरसिंह 'सरपंच'
ग्राम-दैडा (चौथान)
पौड़ी गढ़वाल

44. वचन सिंह सूबेदार
ग्राम-जन्दरिया (चौथान)
जिला पौड़ी गढ़वाल

45. धन सिंह
ग्राम जन्दरिया तल्ला (चौथान)
जिला पौड़ी गढ़वाल

46. श्रीमती काशी देवी
पूर्व प्रधान
मासौं (चौथान)
जिला पौड़ी गढ़वाल

47. कु. कुसुम पंचोली
ग्राम व पो.-भरनौ
जिला पौड़ी गढ़वाल

48. कमला गुसाईं
ग्राम व पो. भरनौ
जिला पौड़ी गढ़वाल

49. हेमा भण्डारी
ग्राम व पो.-काण्डई
जिला पौड़ी गढ़वाल

50. राधा रतूड़ी
ग्राम काण्डई
जिला पौड़ी गढ़वाल

51. गीता जोशी
ग्राम व पो.-बसोला
जिला पौड़ी गढ़वाल

52. रेनू रमोला
ग्राम व पो. रिक्साल
जिला पौड़ी गढ़वाल

53. नन्दी नेगी
ग्राम व पो. भरनौ
जिला पौड़ी गढ़वाल

54. मंजू गुसाईं
ग्राम व पो.-भरनौ
जिला पौड़ी गढ़वाल

55. जानकी रमोला
ग्राम व पो. भरनौ
जिला पौड़ी गढ़वाल

56. राधा जोशी
ग्राम मनियार गांव
जिला पौड़ी गढ़वाल

57. किरन रमोला
ग्राम व पो. भरनौ
जिला पौड़ी गढ़वाल

58. आरती गुसाईं
ग्राम व पो. भरनौ
जिला पौड़ी गढ़वाल

59. विमला
ग्राम-ग्वालखिल
जिला पौड़ी गढ़वाल

60. कुन्ती गुसाईं
ग्राम व पो. भरनौ
जिला पौड़ी गढ़वाल

61. चक्रधर प्रसाद बन्दूणी
प्र. अ. उफरैंखाल
जिला पौड़ी गढ़वाल

62. ताजवर सिंह 'डोगरा'
प्र.अ. - पू.मा.वि. भरनौ
जिला पौड़ी गढ़वाल

63. हीरा सिंह, प्रधान
ग्राम-स्यूसांल
जिला पौड़ी गढ़वाल

64. आशाराम ढौडियाल, पूर्व प्रधान
ग्राम-ढौड
जिला पौड़ी गढ़वाल

65. वीरेन्द्र सिंह गुसाईं
प्रधानाचार्य
इ. का. चौखाल, जिला पौड़ी गढ़वाल

66. नारायण सिंह बिष्ट
ग्राम-पीपलकोटी, पो. बूंगीधार
जिला पौड़ी गढ़वाल

67. कुलानन्द आर्य
प्र. अ. डुलमोट
जिला पौड़ी गढ़वाल

68. मायाराम ढौडियाल
प्र. अ. भैड़गांव मल्ला

69. उत्तम सिंह रावत 'प्रधान'
ग्राम-लिंगुडिया
जिला पौड़ी गढ़वाल

70. कुंवर सिंह
ग्राम-लिंगुडिया
जिला पौड़ी गढ़वाल

71. मोहन सिंह गुसाईं
रा. ए. चिकित्सालय
उफरैंखाल
जिला पौड़ी गढ़वाल

72. राजेसिंह
राजन जनरल स्टोर, उफरैंखाल
जिला पौड़ी गढ़वाल

73. पीताम्बर दत्त ढौडियाल
ग्राम-डांडखिल
जिला पौड़ी गढ़वाल

74. राम प्रसाद ढौडियाल
दुकानदार- उफरैंखाल
जिला पौड़ी गढ़वाल

75. कलम सिंह
ग्राम-भतपौ मल्ला पो. उफरैंखाल
जिला पौड़ी गढ़वाल

76. गोपाल सिंह
ग्राम डुलमोट, जिला पौड़ी गढ़वाल

77. उमराव सिंह
ग्राम-डुलमोट
जिला पौड़ी गढ़वाल

78. प्रयाग दत्त बौड़ाई
सेवानिवृत्त प्रधानाचार्य
इ. का. सराईखेत
जिला अल्मोड़ा

79. हीरासिंह राणा
लोकगायक
ग्राम-डढोली (मानिला) जिला अल्मोड़ा

80. लीलानन्द रतूड़ी
ग्राम-खैतोली
पौड़ी गढ़वाल

81. मोहन सिंह रावत
प्रवक्ता अर्थशास्त्र
रा.इं. का. छोई
रामनगर, जिला नैनीताल

82. बचीराम ढौडियाल
फोटोग्राफर
ग्राम-काण्डई (चौथान), पौड़ी गढ़वाल

83. आनन्द सिंह नेगी
डिप्टी रैंजर
ग्राम-किमवाड़ी (चौथान), पौड़ी गढ़वाल

84. मनीराम शास्त्री
ग्राम-स्यूसांल
पौड़ी गढ़वाल

85. श्रीमती सरस्वती देवी (पधानी दीदी)
ग्राम-दैड़ा, पो. जैतीडांग, पौड़ी गढ़वाल

86. चन्द्रादत्त एवं श्री कृष्ण ढौडियाल
बुनकर
ग्राम व पो. बुढ़ाकोट (गढ़वाल)

87. महीदेव सिंह रावत
प्रधानाध्यापक
उखल्यों (चौथान)

88. सत्येन्द्र कण्डवाल, प्रधानाध्यापक
उखल्यों (चौथान)

89. पं. भगवती प्रसाद कण्डवाल
ज्योतिषाचार्य
पो. काण्डाखाल, पौड़ी गढ़वाल

90. दरवान सिंह (सरपंच)
ग्राम-मंगरो (चौथान)
पौड़ी गढ़वाल

91. जगत सिंह रजवार
प्रवक्ता-हिन्दी
ग्राम-केलानी
चौकोट, जिला अल्मोड़ा

92. ध्यानसिंह (पधान)
ग्राम-दैड़ा (चौथान)
पौड़ी गढ़वाल

93. मंगल सिंह वणस्वाल
ग्राम-भैडगांव मल्ला
पौड़ी गढ़वाल

94. भूपाल सिंह
दुकानदार
ग्राम-कफलगाँव तल्ला
पौड़ी गढ़वाल

95. श्री बुद्धिसिंह रावत
ग्राम-कफलगांव तल्ला
पौड़ी गढ़वाल

96. सतीशचन्द्र नौटियाल
ग्राम-सिमखोली (गुरफली)
पो. चौखाल
(गढ़वाल)

97. कविदत्त जोशी
ग्राम व पो. बसोला
पौड़ी गढ़वाल

98. भवान सिंह
पूर्व प्रधान
ग्राम-थान (चौथान)
पौड़ी गढ़वाल

99. कैलाश जोशी
ग्राम व पो. भरनौ
पौड़ी गढ़वाल

100. प्रताप सिंह नेगी
ग्राम कलाण-चौथान
पौड़ी गढ़वाल

101. डा. जगदीश कण्डारी
स्यूंसी
पौड़ी गढ़वाल

102. श्रीमती बसन्ती देवी ढौडियाल
पूर्वप्रधान
ग्राम-गाडखर्क
डुमलोट
जिला पौड़ी गढ़वाल

तथा दूधातोली के उच्च शिखर कोधाबगड़ में कई हरे-भरे वन पैंच तैयार किये गये हैं. इसके अलावा कई गांवों को वन-रोपण कार्यक्रम के लिए आर्थिक मदद देकर प्रेरित किया है.

उद्यानीकरण

उद्यान पर्वतीय क्षेत्र के लिए आर्थिक क्रान्ति के सर्वोत्तम स्रोत है. इसी बात को सोचकर संस्थान द्वारा कुछ गांवों में आदर्श उद्यानों की स्थापना की गई है. जिनमें मुख्य रूप से अखरोट के पौधों का रोपण किया गया है. ग्राम जन्दरिया, स्यूँसाल, देहा और चोपता में लगाये गये उद्यान शत-प्रतिशत सफल और सुरक्षित अवस्था में पनप रहे हैं.

विद्यालय पर्यावरण शिक्षण

छात्रों में प्रारम्भ से ही अपने पर्यावरण संरक्षण के प्रति रुचि उत्पन्न करने के ध्येय से संस्थान द्वारा विद्यालय पर्यावरण शिक्षण कार्यक्रम शुरू किया गया है. जिसके अन्तर्गत पर्यावरण संरक्षण संगोष्ठियों के आयोजन करना पर्यावरण कक्षा बनाना, नर्सरी, स्कूल वन तैयार करना तथा पर्यावरण शिक्षण यात्राओं का आयोजन करना आदि मुख्य है. संस्थान द्वारा अब तक इण्टर कालेज उफरैंखाल, थलीसैंण, सराईखेत, हाईस्कूल चोखाल, जूनियर हाईस्कूल चोपता, प्राइमरी स्कूल भरना, उफरैंखाल, गाइखर्क, स्यूँसाल, देहा में इस दिशा में प्रायोगिक कार्य किये गये हैं.

जल संरक्षण

अपनी अध्ययन यात्राओं के दौरान संस्थान में कार्यकताओं ने पाया कि पिछले पचास सालों में पहाड़ के हर गांवों की आबादी तीन से पाँच गुना तक बढ़ गई है. और तेजी से वनों का ह्रास हुआ है. जिससे लगभग सत्तर फीसदी गांवों में पानी का संकट आ गया है. और यह समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है. पहाड़ों में जल संरक्षण सम्वर्द्धन एवं पुनर्उत्पादन की दृष्टि से संस्थान द्वारा उफरैंखाल में लगभग दो हैक्टेयर भूमि को जल बिहार के रूप में विकसित किया गया है. बिल्कुल सदा शुष्क रहने वाला यह भू-खण्ड अब आद्रतायुक्त बना रहता है. और ढाल पर बनाई गई छोटी सी झील पानी से भरी रहती है. संस्थान को उम्मीद है कि जल संरक्षण का यह प्रयोग पर्वतीय क्षेत्रों में पानी की कमी को पूरा करने की दिशा में उल्लेखनीय साबित होगा.

वैकल्पिक ऊर्जा

संस्थान दूर दराज के क्षेत्रों में वैकल्पिक ऊर्जा साधनों का प्रचार-प्रसार व स्थापना भी करा रहा है. उसके प्रयासों से ही पर्वतीय क्षेत्रों में सर्वप्रथम 'नेहा' द्वारा सौर पथ प्रकाश संयंत्र सन् 1984 में उफरैंखाल, गाडखर्क में लगे थे. अब संस्थान के प्रयासों से उफरैंखाल में 'नेहा' द्वारा पच्चीस किलोवाट का पवन विद्युत संयंत्र स्थापित किया जा रहा है.

ईंधन बचत, धूम रहित चूल्हों का निर्माण उसका एक मुख्य कार्य रहा है. इस प्रकार के चूल्हों को यद्यपि कई विभागों द्वारा लगाया जाता है, लेकिन सम्पूर्ण सफलता नहीं पा सके. संस्थान ने अपने अथक परिश्रम से इनका सफल माडल तैयार कर ग्राम गाडखर्क, डाडखिल में इन्हें स्थापित किया है, जो कि पूर्णतः सफलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं.

उक्त के अलावा संस्थान द्वारा गांव-गांव में पर्यावरण सम्बर्धन-संरक्षण एवं शिक्षण के लिए प्रतिवर्ष चार शिविरों का आयोजन किया जाता है. जो कि अलग-अलग गांवों में होते हैं. क्षेत्र में महिला मंगल दलों का गठन पदयात्राओं, शौचालयों का निर्माण, प्रसूति स्नान घर आदि संस्थान के प्रमुख कार्यों में से है.

(लेखक दूधातोली लोक विकास संस्थान के मुखिया हैं.)

'पाणी राखो आंदोलन'

'रहिमन पानी राखिए बिना पानी सब सून' को चरितार्थ करते हुए उत्तरांचल के पौड़ी गढ़वाल जिले के सुदूरवर्ती क्षेत्र उफरैंखाल में जल संरक्षण के लिए ठेठ लोक अनुभव से उपजा 'पाणी राखो आंदोलन' पिछले एक दशक के बरसाती पानी के संरक्षण की दिशा में मिसाल कायम कर रहा है. पौड़ी जिले के उफरैंखाल में पिछले एक दशक से 'पाणी राखो आंदोलन' चल रहा है जिसमें जन-जन की सक्रिय भागीदारी है.

'पाणी राखो आंदोलन' की उत्पत्ति भी उतनी ही रोचक है, जितनी कि पानी की उत्पत्ति. वर्ष 1987 में पूरे देश में गंभीर सूख पड़ा और इसके साथ ही देशभर में पानी को लेकर चिंताएं व चर्चाएं भी शुरू हुई. लेकिन चिंता व चिंतन के बजाए उफरैंखाल में पानी को बचाने की सार्थक मुहिम शुरू हुई. इसके लिए सच्चिदानंद भारती ने दूधातोली लोक विकास संस्थान की स्थापना की. शुरुआत में श्री भारती ने प्रयोग के तौर पर पौधों का रोपण किया, लेकिन सूखे की स्थिति के बीच इन पौधों को कैसे बचाया जा सकता था. इसके लिए पारंपरिक जल तलाइयों को ढालदार खेतों व पौधों के लिए उपयोगी बनाते हुए वर्षा के पानी को संग्रह करने के लिए गड्ढे बनाए. वर्ष 1989 में उफरैंखाल में 2,000 जल तलाइयों का निर्माण किया गया. वर्ष 1998 तक बढ़कर इन जल तलाइयों की संख्या 10 हजार तक पहुंच गई. इस सम्पूर्ण अभियान में 60 से अधिक महिला मंगल दल जुड़े हुए हैं. सच्चिदानंद भारती के निर्देशन में ग्रामीणों ने जल संरक्षण के साथ-साथ आर्थिकी बढ़ाने के प्रयास भी जारी रखे. इसके तहत ग्रामीणों ने वर्ष 1994-95 में दुमलोट में अखरोट के 1500 पौधे रोपे, जबकि हर्बल क्यारी व फलोत्पादन का कार्य भी शुरू किया. इस बीच जल तलाइयों का निर्माण भी चलता रहा और इसी का नतीजा था कि आज उफरैंखाल के उन गाड-गधेरों में भी पानी सुलभता से मिल रहा है, जो एक दशक पूर्व सूख चुके थे. उफरैंखाल में जल संरक्षण के लिए चल रहे आंदोलन से सिर्फ पानी को ही नहीं बचाया जा रहा है, बल्कि मृदा क्षरण का प्रतिशत भी न्यूनतम हुआ है.

इसके अलावा क्षेत्र की ग्रामीण महिलाओं के सामने आए दिन उत्पन्न होने वाली घास-चारे की समस्या का भी समाधान निकल आया है क्योंकि पाणी राखो आंदोलन के तहत ग्रामीणों की सहभागिता से जल तलाइयों का निर्माण तो हुआ ही साथ ही इन तलाइयों के नजदीक पानीदार पौधों-उतीस, बांस, बुराश आदि का रोपण किया गया और पन ढालों पर घास लगाकर बड़े-बड़े जल बन्ध बनाए गए. एक दशक पूर्व हुई शुरूआत में आज उफरैंखाल ही नहीं बल्कि गाडखर्क, दुमलोट, भराड़ीधार, उल्याणी, गुरफुली, कुंदनपुर, भतपौ, भैड़गांव, भरनी, कफलगांव, डांडखिल, उखल्यूं, मनियारगांव, जणदरिया, चौंडा, ग्वीनी, ग्वालखिल सहित दर्जनों गांव जल संरक्षण के क्षेत्र में मिसाल कायम कर रहे हैं.

संतोष चमोलीः (दैनिक जागरणः 19 अप्रेल 2005)

दामोदर सिंह राठौर

प्रभावित करने वाली प्रयोगधर्मिता

देवचूला के वनों की प्रच्छन्न हरियाली के बीच 'वृक्ष मित्र' दामोदर सिंह राठौर का 'स्मृति वन' चौंकाता नहीं लेकिन उनकी प्रयोगधर्मिता हतप्रभ करने वाली है. रक्तचन्दन, सिलिंग, काफल, बुरांश, तेजपात जैसी विशिष्ट जलदायिनी वृक्ष प्रजातियों के पुनर्उत्पादन के बारे में प्रचलित परम्परागत ज्ञान, धारणाओं तथा वैज्ञानिक तथ्यों को खारिज कर जिस तरह इन्हें उन्होंने अपने स्मृति वन में उगाने में सफलता प्राप्त की है, पादप विज्ञानियों के लिए ईर्ष्या का विषय हो सकता है. इन विशिष्ट वृक्ष प्रजातियों के फलों को पक्षियों द्वारा खाए जाने के पश्चात् उनके आमाशय में होने वाली विशेष क्रिया के बाद ही उगने की ध ारणा है. दामोदर सिंह के पास इस तरह का कृत्रिम वातावरण और क्रियाएँ करने के लिए न पर्याप्त साधन थे, न ही विज्ञान का कोई नियम उनका मार्गदर्शक बना. लेकिन देवचूला की सघन वनों वाली धरती ने इस 'प्रकृति पुत्र' को ऐसा हुनर दिया है कि वह हर असंभव को संभव में बदलता जा रहा है. उन्होंने सामान्य पॉलीथिन, चिड़िया की बीट, गोबर और उसे 24 घंटे तक निश्चित तापमान देकर इन प्रजातियों के लाखों पौधे उगाने में सफलता प्राप्त कर क्षेत्र में नमी और जल स्तर बढ़ाने का उल्लेखनीय प्रयास किया है.

दामोदर सिंह के इस अनूठे कार्य को भारत सरकार ने मान्यता देकर वर्ष 2000 में उन्हें 'वृक्ष मित्र' सम्मान से नवाजा है. पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय के कृषि वैज्ञानिक इस करतब के लिए उन्हें पुरस्कृत कर चुके हैं. दामोदर सिंह कहते हैं- 'मेरा लक्ष्य पुरस्कार नहीं, डेढ़ अरब वृक्ष उगाकर आसपास के जलस्रोतों को रिचार्ज करना है. 98 लाख पेड़ मैं लगा चुका हूँ और जल्दी ही अपना लक्ष्य पा लूँगा.' निरन्तर छीजते जलस्रोतों के लिऐ उनका कहना है 'इसके लिए सरकारी वनविद जिम्मेदार हैं. ये प्रकृति से कुछ नहीं सीखना चाहते. उसे जीतने का दंभ पाले हुए हैं. इसलिए करोड़ों रुपये खर्च कर अरबों पौधे रोप देने के बाद भी पेड़ों की संख्या घटती जा रही है.'.

पिथौरागढ़ जिले की डीडीहाट तहसील के घने हिमालयी वनों वाली देवचूला पहाड़ी में दामोदर सिंह राठौर ने 40 वर्षों की कड़ी मेहनत से एक हजार से अधिक हिमालयी वृक्ष और वनस्पति प्रजातियों का 'स्मृति वन' तैयार किया है. 500 हेक्टेएअर क्षेत्र में फैला स्मृति वन प्रकृति और पर्यावरणप्रेमियों, पर्यटकों और पादपविज्ञानियों के लिए आकर्षण के केन्द्र के रूप में खूब ख्याति अर्जित कर चुका है परन्तु उनका मौलिक कार्य व्यापक चर्चा का विषय नहीं बन सका है. स्मृति वन में तरह-तरह की वृक्ष और वनस्पति प्रजातियों के उगाने का प्रयोग तो वे बचपन से ही कर रहे हैं लेकिन पक्षियों के आमाशय जैसा वातावरण कृत्रिम रूप से तैयार उन्होंने रक्तचन्दन, सिलिंग, काफल और तेजपात जैसी प्रजातियों का पुनर्उत्पादन करने में सफलता प्राप्त की है. इन प्रजातियों के बारे में यह कहा जाता है कि पक्षियों द्वारा बीज निगले जाने के बाद उनके आमाशय में होने वाली कुछ क्रियाओं के परिणामस्वरूप ही इन के बीजों का उगना संभव होता है.

दामोदर सिंह बताते हैं- 'इन पेड़ों के बीजों के प्रसंस्करण के लिए मुझे पक्षियों का आमाशय जैसा वातावरण बनाने की सूझी पर इसके लिए मेरे पास उपकरण और रसायन तत्व नहीं थे. मैंने प्रयोग के तौर पर पॉलीथिन में बीजों को डालकर उसमें पक्षियों की बीट, गोबर मिला दिया और इसे तापमान देने के लिए पॉली हाउस में रख दिया. पॉलीहाउस में तापमान अधिक होने के कारण मेरा प्रयोग सफल नहीं हो सका. इसके बाद बीजों से भरे पॉलीथिन को मैंने घर के भीतर अंगीठी जला कर कुछ दूरी पर टाँग दिया. 24 घंटे इसी तापमान में रखने के बाद बीजों को नर्सरी में छिड़क दिया. हफ्ते भर बाद जब क्यारियों में अंकुर सिर उठाने लगे तो मुझे पता चल गया कि प्रकृति ने मेरी सुन ली है.' इस विधि से वे अब तक हजारों की संख्या में पौधे उगा चुके हैं.

पिथौरागढ़ जिले के भनड़ा गांव में जन्मे दामोदर सिंह 73 साल के हो गए हैं पर उनकी लगन और उत्साह पर उम्र भारी नहीं पड़ सकी है. आज भी वे 10-12 घंटे रोजाना काम करते हैं. वे कहते हैं- 'पहाड़ी परिवेश में पला-बढ़ा होने के कारण पेड़ लगाने का शौक बचपन से ही था. मंदिरों के पास देवदार के पेड़ लगाया करता था. उसके बाद सेना में कैडेट बन गया. 1955 में सेना द्वारा संचालित कृषि पाठ्यक्रम में सीनियर डिप्लोमा किया. सेना छोड़ने के बाद ग्राम सेवक की सरकारी नौकरी की. स्मृति वन को तैयार करने का काम नौकरी के दौरान ही शुरू कर चुका था लेकिन 1978 में स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के बाद इसी में रम गया.'

राठौर के 'स्मृति वन' में एक हजार से अधिक वृक्ष और वनस्पति प्रजातियाँ हैं. उनकी नर्सरी में अंगू, मीठा पांगर, सिलिंग, देवदार, चाय, बांज, रियांज, फल्यांट, दालचीनी, सुरई, माल्टा, काफल आदि वृक्ष और चिरड़, थुनेर, पाषाण भेद, सम्यौ, गुनबनफ्सा, बज्रदन्ति जैसी बहुमूल्य औषधीय प्रजातियों के 9,42,500 पौधे तैयार हैं. समस्या यह है कि इन पौधों के रोपण के लिए खाली जमीन उनके पास नहीं है. वे चाहते हैं कि वृक्षारोपण से जुड़े सरकारी महकमे इस कार्य में हाथ बंटाए.

यह सब करने के पीछे आपका लक्ष्य क्या है? पूछे जाने पर राठौर कहते हैं- 'पहाड़ की गरीबी, कष्ट और अभाव भरे जीवन से मुक्ति की क्षमता केवल यहां के अपार वन संसाधनों पर ही है. यदि हम हिमालय की वनस्पति संपदा के महत्व को समझते हुए इसके संतुलित दोहन की मन:स्थिति बना सकें तो पहाड़ का अर्थतंत्र बदला जा सकता है. हम यहाँ पायी जाने वाली जड़ी-बूटियों के कृषिकरण ओर विपणन में सफल हो जाएँ तो संपन्न राज्यों की श्रेणी में उत्तरांचल को शामिल करा सकते हैं.

दामोदर सिंह के स्मृति वन के घनेपन ने एक अनूठा कार्य यह किया है कि जलदायी वृक्षों का वन तैयार हो जाने से भनड़ा और आस पास के गांवों के नौलों, धारों में पानी की मात्रा बढ़ गई है. उनके आवास के पास तो इतना पानी है कि उन्होंने एक बड़े से तालाब का निर्माण कर मछली पालन शुरू कर दिया है. जंगल उगाने में मिली सफलता के बाद वे अब जल संरक्षण के प्रति ग्राम समुदाय का ध्यान आकर्षित करने के प्रयास में जुटे हैं. उन्हें जहाँ भी जलस्रोत मिलते हैं, वहाँ पर जलदेवी की स्थापना कर देते हैं. अब तक आध ा दर्जन जलस्रोतों पर वे ऐसा कर चुके हैं. उनका कहना है कि जल देवी की स्थापना कर दिए जाने के बाद लोग स्रोत की सुरक्षा के प्रति तो जागरूक हो ही रहे हैं उनमें जलस्रोतों के प्रति श्रद्धाभाव पनप रहा है. •••

मोहन काण्डपाल

अपने संसाधन, अपना प्रबंधन

'पर्यावरण वाले मास्साब'. सुरईखेत इलाके में उन्हें इसी नाम से जाना जाता है. उनका असली नाम मोहन काण्डपाल है और आदर्श इण्टर कालेज, सुरईखेत में रसायन शास्त्र पढ़ाते हैं. रसायन शास्त्र, विभिन्न यौगिकों के समिश्रण से उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रियाओं के अध्ययन का विज्ञान है. लेकिन 'पर्यावरण वाले मास्साब' ने इन निरपेक्ष रसायनों पर कोई नया प्रयोग करने की बजाय समाज विज्ञान के क्लिष्ट यौगिकों को तलाश कर एक ऐसे प्रयोग की आधारशिला रखी है, जो उत्तराखण्ड जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर आश्रित समाज और योजनाकारों को नई दिशा देने वाला है. वे उत्तराखण्ड की ग्रामीण अर्थव्यवस्था की धुरी महिलाओं को केन्द्र बना कर प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन और सामाजिक जागरूकता का ऐसा अभियान संचालित कर रहे हैं, जो अल्मोड़ा जिले के द्वाराहाट और भिकियासैंण विकासखंडों के 44 गांवों में खासी लोकप्रियता हासिल कर चुका है. 13 साल पूर्व शुरू किए गए इस अभियान के परिणाम हरियाली, ईंधन तथा चारे की उपलब्धता और महिलाओं के शसक्तीकरण के रूप में इस क्षेत्र में साफ महसूस किए जा सकते हैं.

भिकियासैण और द्वाराहाट विकासखंडों के बिठोली, बजीना, कसखेत, शिलिंग, काण्डे, बेठुली, बजान, बहेड़ा, मटेला, सनैड़ी, ढूँगा, बिठोली, मनार, गहड़, नौरी आदि 44 गाँवों में आज से 11 साल पहले मोहन काण्डपाल ने इस अभियान की नींव रखी. वे कहते हैं 'आम तौर पर गांव से संबंधित समस्याओं और निर्णयों पर महिलाओं की कोई राय नहीं ली जाती. इस परम्परा को उलटने के लिए सुरईखेत के आस पास के गांवों में उनकी पहल पर महिला मंगल दलों के गठन का कार्य आरम्भ हुआ. ये महिला मंगल दल आज इतने शसक्त बन चुके हैं कि इनकी सहमति के बिना गांव से संबंधित कोई भी निर्णय नहीं लिया जाता. महिलाओं की यह चेतना केवल राजनैतिक और सामाजिक जागरूकता के रूप में ही उजागर नहीं हो रही बल्कि वनों के प्रबंधन, जल संरक्षण, शराब बंदी और त्रिस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था में भी महिलाएँ बढ़-चढ़ कर भागीदारी के रूप में भी सामने आ रही हैं. इस बार हुए पंचायत चुनावों में महिला मंगल दलों को खासी सफलता हाथ लगी है. ग्राम प्रधान और क्षेत्र पंचायत सदस्यों के रूप में तो वे चुनी ही गई हैं. मंगल दलों की एकता ने ग्राम पंचायत चुनावों में मुख्य भूमिका निभाने वाली परम्परागत धड़े बाजी और जाति वाद की हदें भी तोड़ दी और प्रत्येक गांव में महिलाओं का एक अलग धड़ा बन कर उभरा है. महिला मंगल दलों की चेतना का सबसे उल्लेखनीय पक्ष प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण दोहन और संरक्षण की विधियाँ स्थापित करने के रूप में सामने आया है. सुरईखेत और जालली क्षेत्र में चारों ओर चीड़ का साम्राज्य है. चीड़ की प्रवृत्ति के अनुरूप वनों में घास, चारा प्रजाति के वृक्ष और झाड़ियों की अत्यधिक कमी है. जलस्रोत कम हैं और निरन्तर छीजते जा रहे हैं. इन समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए गांव के वन क्षेत्र में उपलब्ध चारा तथा ईंधन की मात्रा और पानी की उपलब्धता के अनुरूप इनके उपयोग और संरक्षण के लिए महिला मंगल दलों ने आपसी सहमति से अनेक नियम बनाए हैं.

बिठोली गांव में चारा, ईंधन और पीने के पानी की घोर समस्या है. पानी की माँग को लेकर कई उग्र आन्दोलन इस क्षेत्र में हो चुके हैं. मोहन कोण्डपाल बताते हैं 'महीनों खिंचे आन्दोलनों से भी जब समस्या नहीं सुलझी तो उन्होंने गांव में उपलब्ध चारा, ईंधन और पानी के विवेकपूर्ण इस्तेमाल और उपलब्धता बढ़ाने के प्रयासों के लिए महिलाओं को प्रेरित किया.' आज बिठोली में मुक्त चराई पर रोक है, जिससे जंगल में घास की मात्रा और गुणवत्ता बढ़ी है. अनुत्पादन मवेशियों की संख्या घटी है. जलस्रोतों में पानी की मात्रा बढ़ाने के लिए 210 खालों का निर्माण किया गया है. ग्राम पंचायत ने भी जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत खालों का निर्माण शुरू किया है. नौलों पर ताले लगाए जाते हैं जो दिन में एक बार खुलते हैं और प्रत्येक परिवार को बराबर पानी बाँटा जाता है. इसी प्रकार प्रत्येक परिवार से केवल एक व्यक्ति को चारा या ईधन लेने जंगल जाने की इजाजत है और वन क्षेत्र के प्रवेश द्वार पर तराजू लगाया गया है ताकि कोई भी निर्धारित मात्रा 30 किलो से अधिक घास और लकड़ी न ला सके. बिठोली जैसे ही नियम क्षेत्र के अन्य गांवों में भी अस्तित्व में हैं. जिन गांवों में आवश्यकता से अधिक चारा और ईधन है, उसे अन्य गांवों को बेच कर पैसा महिला मंगल दलों के खाते में जमा कर दिया जाता है.

वन उत्पादों की उपलब्धता बढ़ाने के लिए महिला मंगल दलों द्वारा गांवों के आस पास की वृक्षविहीन पहाड़ियों, वन पंचायत, ग्राम पंचायत और निजी भूमि पर बाँज के जंगल उगाने के प्रयास किए गए जा रहे हैं. मोहन काण्डपाल बताते हैं कि इस क्षेत्र के 18 गाँवों में अब तक करीब 25,000 बाँज के पेड़ लगाए गए हैं. जितने पेड़ों की सुरक्षा और देखभाल संभव है, इसका आंकलन करने के बाद ही नर्सरी में पौंध तैयार की जाती है.' बांज के अलावा अब भीमल, खड़िक, आंवला, बांस, बुरांश, काफल के पौधों का भी रोपण किया जाने लगा है. महिला मंगल दल शिलिंग की अध्यक्ष हीरा नेगी कहती हैं 'अन्य पौधों का रोपण इसलिए किया जा रहा है ताकि बाँज के तैयार हो रहे वनों पर संभावित दबाव को कम किया जा सके.' महिलाओं की यह मेहनत हरियाली के द्वीपों की तरह इस क्षेत्र में देर से ही दिखाई देने लगती है.

आम तौर पर अध्यापक स्कूल की गतिविधियों तक ही सीमित रहते हैं लेकिन आपने सामाजिक कर्म का यह कठिन रास्ता कैसे चुना? मोहन काण्डपाल कहते हैं 'कानपुर में एम.एससी करने के दौरान 1984 में छुट्टियों बिताने मैं घर आया था, उन दिनों 'नशा नहीं रोजगार दो' आन्दोलन चरम पर था. मुझ पर इस आन्दोलन का गहरा असर पड़ा. मुझे लगा कि कुछ करना चाहिए. पर क्या करना चाहिए, मैं यह तय नहीं कर पा रहा था. जब मैं आदर्श इण्टर कालेज सुरईखेत में अध्यापक नियुक्त होकर उत्तराखण्ड सेवा निधि के सम्पर्क में आया तब महिलाओं के संगठन तैयार करने का काम शुरू किया. धीरे-धीरे यह मुहिम वन और पानी के संरक्षण तक जा पहुँची. फिर एक दौर ऐसा भी आया जब महिलाएँ शराब बंद करने और गांव की समस्याओं के लिए खुद के दम पर आन्दोलन करने लगी. अब तो गांवों में महिला मंगल दलों की सहमति के बिना कोई भी निर्णय नहीं लिया जाता. वे कहते हैं 'शुरू में पुरुषों को यह नागवार गुजरा. उन्होंने महिलाओं को हतोत्साहित भी किया लेकिन अब वे इस सच्चाई को स्वीकार कर महिला मंगल दलों को भरपूर सहयोग दे रहे हैं.' उनका लक्ष्य अपने कार्यक्षेत्र को एक मॉडल की तरह विकसित करने का है ताकि उत्तरांचल के अन्य क्षेत्रों के लिए यह इलाका प्रेरणाश्रोत का काम करे और राज्य के योजनाकार जमीनी प्रयोगों के आधार पर उत्तरांचल के लिए ऐसी योजनाएँ बनायें, जिनसे हरियाली का आवरण तो बढ़े ही पर स्थानीय लोगों की वन आधारित आजीविका भी बची रहे. ●●●

बीज बचाओ अभियान

स्थानीयकरण की मुहिम

सत्तर के दशक में हुआ चिपको आन्दोलन यद्यपि अपने मूल रूप में आज हमारे सामने नहीं है पर सच्चिदानन्द भारती का प्रयोग, डाल्यों का दगड़्या, मैती और बीज बचाओ आदि आन्दोलन चिपको की धाराओं के रूप में आज भी विद्यमान हैं. इन्हें चिपको का विस्तार कहना ज्यादा उपयुक्त होगा. इन अभिनव प्रयोगों से जुड़े कार्यकर्ता चिपको की पृष्ठभूमि से निकल कर आए हैं. इन्होंने चिपको को वर्तमान संदर्भों में ढाल कर नई और व्यापक दिशा प्रदान की है.

ऐसे ही आन्दोलनों में से एक 'बीज बचाओ अभियान' उत्तराखण्ड ही नहीं, समूची दुनिया का ध्यान आकर्षित करने में सफल हुआ है. टिहरी जिले की हैंवल घाटी से शुरू हुआ यह अभियान उत्तराखण्ड भर में विस्तार पा चुका है. 'बीज बचाओ अभियान' के प्रमुख कार्यकर्ता विजय जड़धारी, कुंवर प्रसून, धूम सिंह नेगी, श्रीमती सुदेशा आदि चिपको आन्दोलन के भी प्रमुख कार्यकर्ताओं में रहे हैं.

बीज बचाओ अभियान की मुख्य चिन्ता परम्परागत बीजों को बचाना और खेती में रासायनिक खादों और कीटनाशकों का बढ़ता प्रयोग रोकना है. विजय जड़धारी कहते हैं ''पारंपरिक बीजों के समाप्त होने से उत्तराखंड में खेती की संस्कृति प्रभावित हुई है. खेतों की उर्वरा शक्ति क्षीण होती जा रही है. उत्तराखंड के जिन क्षेत्रों में नये बीजों और रासायनिक खादों का उपयोग हुआ वहाँ उत्पादन घट गया और मिट्टी नशेबाज हो गयी है.''

अभियान की शुरूआत विजय जड़धारी और उनके साथियों ने लगभग 10 वर्ष पूर्व अपने गांव नागणी से शुरू की. इन्होंने अपने खेतों में गेहूँ व धान की संकर प्रजातियाँ उगानी बंद कर दी. रासायनिक खादों और कीटनाशकों का उपयोग करना छोड़ दिया. आसपास के क्षेत्रों में गेहूँ व धान की स्थानीय प्रजातियों का पता लगा कर गोबर की खाद का इस्तेमाल कर उगाना शुरू किया. फसल तैयार होने के बाद इन्होंने पाया कि स्थानीय बीजों की उपज तथाकथित उन्नत बीजों से बिल्कुल कम नहीं है.

इसके बाद इन युवाओं ने स्थानीय बीजों की खोज में गढ़वाल के दूरदराज क्षेत्रों की पदयात्राएँ की. यह जानकर उन्हें गहरा सदमा लगा कि जखोली, बालगंगा घाटी, सिराई, उप्पू, कमल सिरई तथा हिमाचल प्रदेश की सीमा से लगे नैटवाड़ और सांकरी में भी गेहूँ, धान और आलू की नयी संकर किस्में पहुँच गयी हैं, जिन्हें उगाने के लिए काश्तकार रासायनिक खादों और कीटनाशकों का प्रयोग कर रहे हैं.

जड़धारी और उनके साथियों ने ग्रामीण क्षेत्रों की पदयात्राएँ कर काश्तकारों को अपने बीजों के महत्व के बारे में जागरूक करने का प्रयत्न किया. संकर बीजों के उत्पादन की तुलना स्थानीय बीजों के उत्पादन से की. यहाँ की पारिस्थितिकी को बनाये रखने में स्थानीय प्रजातियों का महत्व बताया. धीरे-धीरे नागणी गाँव से शुरू हुआ यह अभियान पूरी हैंवलघाटी में फैल गया. बीज बचाओ की मुहिम का यह सकारात्मक पहलू सामने आया है कि पिछले 12-13 वर्षों में ही धान की 126, गेहूँ की 10, मडुवे की 36, लोबिया की 9, झंगोरी (मादिरा) की 6, राजमा की 110, कुलथ (गहत) की 8, भट्ट की 9, काकुन (मक्का) की 3, चीना की 3 एवं जौ की 3 स्थानीय प्रजातियां किसानों ने एकत्र कर ली हैं.

किसानों के पारम्परिक ज्ञान के आधार पर इन बीजों का संरक्षण किया जाता है. बीज पारम्परिक अदला बदली से एक से दूसरे काश्तकार तक पहुँच रहे हैं. बीज बचाओ अभियान पशुपालन और कृषि के बीच अटूट रिश्ते को बनाये रखने के प्रयास में भी जुटा है. अभियान का मानना है कि हमारे देश में खेती और पशुपालन की परम्परागत पद्धति आज के विज्ञान, पर्यावरण व पारिस्थितिकी तंत्र की कसौटी पर खरी उतर रही है. लेकिन पुराने ज्ञान पर आधुनिकता के हावी होते चले जाने से और कृषि के यन्त्रीकरण के चलते पशुपालन का रिश्ता कृषि से खत्म होता जा रहा है.

बीज बचाओ की मुहिम का यह सकारात्मक पहलू सामने आया है कि पिछले 12-13 वर्षों में ही धान की 126, गेहूँ की 10, मडुवे की 36, लोबिया की 9, झंगोरी (मादिरा) की 6, राजमा की 110, कुलथ (गहत) की 8, भट्ट की 9, काकुन की 3, चीना की 3 एवं जौ की 3 स्थानीय प्रजातियां किसानों ने एकत्र कर ली हैं. किसानों के पारम्परिक ज्ञान के आधार पर इन बीजों का संरक्षण किया जाता है. बीज पारम्परिक अदला बदली से एक से दूसरे काश्तकार तक पहुँच रहे हैं.

अभियान का यह भी मानना है कि उत्तराखण्ड की पारिस्थितियों में कृषि का यंत्रीकरण नहीं हो सकता. रासायनिक खादों और कीटनाशकों के प्रयोग से जैव विविधता संकट में पड़ती है. इसलिए यहाँ की स्थितियों में स्थानीय प्रजाति के पालतू पशुओं पर भरोसा कर ही यहाँ के खाद्य अनाजों की गुणवत्ता बढ़ायी जा सकती है.

अभियान बीज बचाओ की मुहिम को उत्तराखण्ड की विशिष्ट परिस्थितिकी और जैव विविधता को बचाने की आधारभूत शर्त मानता है. अभियान के समर्थक कृषि विज्ञानी वीर सिंह कहते हैं 'प्रत्येक पारिस्थितिकी तंत्र अनूठी प्रजातियों और प्रजातियों के अनुवंशों (जीनों) का सम्मिश्रण है. प्रत्येक पारिस्थितिकी तंत्र की एक अनूठी जलवायु है. अनूठी मिट्टी है, अनूठा उसका पानी है और अनूठा समाज और संस्कृति है. ऐसी स्थिति में यदि कोई छेड़छाड़ की जाए तो समझो हम जैविक व्यवस्था पर हस्तक्षेप कर रहे हैं.'

उत्तराखंड के काश्तकारों को स्वावलम्बी बनाने और उसे बहुराष्ट्रीय बीज निगमों और पेटेन्ट कानूनों की गिरफ्त से मुक्त करने का यह प्रभावशाली अभियान है. पिछले दिनों जिस तरह भारत की बासमती, नीम और हल्दी का पेटेन्ट कराकर इन पर अमेरिका ने अपना अधिकार कर लिया था, इसका मुकाबला अपनी स्थानीय प्रजातियों को बढ़ावा देकर ही किया जा सकता है.

अभियान को मिले रहे समर्थन के बाद बीज बचाओ अभियान को उत्तराखण्ड के अन्य क्षेत्रों में भी फैलाने का प्रयास किया जा रहा है. कार्यकर्ता कुमाऊँ में भी अभियान को फैलाने का प्रयास कर रहे हैं. इस क्रम में आराकोट से एक पदयात्रा की जा चुकी है जो कुमाऊँ के अस्कोट तक हुई. पदयात्रा के दौरान कार्यकताओं ने मिट्टी, पानी का संरक्षण, बारहनाजा पद्धति को पुनः बहाल करने, वनों को अधिक सघन करने, खाली जमीनों पर जंगल उगाने जैसे सवालों पर जन जागरण किया.

●●●

जगत सिंह चौधरी

'जंगली का जंगल'

• प्रभात उप्रेती

'चन्द लोगों के बीच में पर्यावरण घूमता रहे तो मैं उसे पर्यावरण नहीं मानता. मैं चाहता हूँ कि यह सारे लोगों की चिन्ता का विषय बने. यह तभी होगा जब वह उनकी जरूरतों से जुड़ेगा यानी लादा गया पर्यावरण नहीं, अपना और अपने लिये पर्यावरण हो. देश-विदेश की चिन्ता हमसे बहुत करवा ली. पर्यावरण सम्पूर्ण चिन्ता का विषय तब बनेगा, जब जनता को लेकर नीति बनेगी.' यह कहना है जगत सिंह चौधरी 'जंगली' का, जिन्होंने 25 वर्षों के अथक प्रयास से मिश्रित वनों की महत्वपूर्ण परिकल्पना को ऐसा साकार रूप दे दिया कि वैज्ञानिक भी हैरान रह गये.

ऋषिकेश-बद्रीनाथ मार्ग पर घोलतीर से 5 किमी. दूर कोटगाँव के ऊपर 80 नाली क्षेत्र में फैला 'जंगली' का यह जंगल किसी पारिस्थितिकी अनुसंधान केन्द्र से कम नहीं लगता. लगभग 4500 फीट की ऊँचाई पर उच्च शिखरीय पाद लता प्रजातियों से लेकर समुद्रतल की ऊँचाई पर उगने वाले वृक्षों और वनस्पतियों को एक साथ उगाकर 'जंगली' ने वैज्ञानिकों को चुनौती दे दी है. मुख्य रूप से उच्च शिखरीय पादप प्रजातियों बाँज, बुराँश, देवदार, तिलोंज, सराई, केल, चमखड़ीक, अंगू, पाँगर, ढेलका, मनीपुरी बाँज, औषधीय प्रजातियों में वज्रदन्ती, बछ, कुटकी, सिलपाड़ा नैर कुट, सालम पंजा, हथकड़ी सभी दस हजार फीट ऊँचे क्षेत्रों की प्रजातियाँ हैं. इसी प्रकार मध्यम ऊँचाई के वृक्षों में सान्दण (सानण), अंगर, तोण (तुन), खैणा (खैर), तिमला, छाँचरी, शहतूत, कचनार, अकेशिया और सीर को उगाने में सफलता पायी है. सबसे न्यूनतम ऊँचाई पर उगने वाले वृक्षों ने रुद्राक्ष, शीशम, साल, सागौन प्रमुख हैं.

लगभग 56 प्रजातियों के वृक्षों को साथ उगाने में 'जंगली' ने सफलता पायी है, जिनकी संख्या दस हजार से अधिक है. चीड़, बाँज, तोण (तुन), खैणा (खैर), तिमला, जैसी वृक्ष प्रजातियों को एक ही समूह में उगाने जैसे काम 'जंगली' ने किए हैं. जबकि वैज्ञानिक इन वृक्षों के आपसी संबंधों के आधार पर एक स्थान पर उगना असम्भव मानते हैं. इसी प्रकार दस प्रजातियों के फल वृक्ष, 20 प्रजातियों के फूल, 10 प्रकार की उन्नत घासें, जिनमें विदेशी घासें भी शामिल हैं, आधी दर्जन बेल लतायें यह सब भी 'जंगली' की 25 वर्षों की मेहनत का फल है.

1950 में जन्मे 'जंगली' 1980 में सीमा सुरक्षा बल से सेवा निवृत्त हुए. घर के पास 80 नाली बंजर जमीन पड़ी थी जिसमें खेती कर पाना असम्भव था. सो इनके पिता ने इन्हें पेड़ लगाने की सलाह दी. बी.एस.एफ. की सेवा के दौरान वह इस जमीन में पेड़ लगाते रहते थे. सेवानिवृत्त होने के बाद अन्य जगह नौकरी तलाशने के बजाय उन्होंने पूरा समय जंगल को देना शुरू कर दिया. तब चारों ओर पत्थर और पेड़ों के ठूंठ थे. इस पर खेती करना असम्भव था. ढलुवा जमीन होने के कारण सारी मिट्टी बह गयी थी. लेकिन उन्होंने पेड़ लगाने का इरादा नहीं छोड़ा. धीरे-धीरे पेड़ विकसित होने लगे. उनका कहना है कि इस दौरान वह जब कभी बाहर गये तो वहाँ की वृक्ष प्रजातियों को भी वहाँ लाकर रोपना प्रारम्भ कर दिया.

विभिन्न ऊँचाइयों पर उगने वाली प्रजातियों को एक साथ उगा लेने के बारे में 'जंगली' बताते हैं कि 'मैंने पहले उच्च शिखरों व बुग्यालों में जाकर उनके वातावरण का अध्ययन किया. बाद में उस पादप को अपने जंगल में लाकर उनका पूर्ण वातावरण उन्हें देने का प्रयास किया. मेरा प्रयोग सफल रहा.' 'जंगली' कहते हैं कि मैंने अपने परिवार और अपने गाँव की माँ-बहनों की पीठ का बोझ हल्का किया. आज मेरे परिवार, मेरे गाँव को जंगल से घास, लकड़ी, फल, औषधीय जड़ी-बूटियाँ प्राप्त हो रही हैं.

मिश्रित वनों को पहाड़ की रीढ़ मानने वाले जगत सिंह 'जंगली' कहते हैं कि मिश्रित वन मिट्टी की जरूरत है. बेकार पत्ते मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हैं. तिमले की पत्ती में कैल्शियम होता है. 22 साल पहले जिस जमीन में पत्थर थे, मिट्टी की ऊपरी परत बह गयी थी आज उसी जमीन पर मैं कुन्तलों अदरक उगा रहा हूँ.

'मिश्रित वनों से पर्यावरण संवर्धन, चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी, औषधीय जड़ी-बूटियाँ, फल-पुष्प तथा कुटीर उद्योग के लिये कच्चा माल एक ही स्थान पर प्राप्त हो जाता है, जिनके कारण गाँव की मूल आवश्यकतायें स्वतः पूरी हो जाती है. 'जंगली' एक प्रजाति के वृक्षों के रोपण व शोषण और पर्यावरण असन्तुलन की मुख्य जड़ मानते हैं. कहते हैं कि 'मैं ऐसा जंगल चाहता हूँ जो लोगों की आवश्यकतायें पूरी करे. जंगलों में सब्जियाँ भी पैदा की जाय जो पूरे उत्तराखंड में पहुँचे, बिना पेट क्या होगा? सेमिनार गोष्ठी में पेट भरता है क्या?'

उनका मानना है कि उत्तराखंड को यदि आत्मनिर्भर बनाना है तो मिश्रित वनों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये. मिश्रित वनों के लाभ गिनाते हुए वह कहते हैं 'मिश्रित वनों से पर्यावरण संवर्धन, चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी, औषधीय जड़ी-बूटियाँ, फल-पुष्प तथा कुटीर उद्योग के लिये कच्चा माल एक ही स्थान पर प्राप्त हो जाता है, जिनके कारण गाँव की मूल आवश्यकतायें स्वतः पूरी हो जाती है. 'जंगली' एक प्रजाति के वृक्षों के रोपण व शोषण और पर्यावरण असन्तुलन की मुख्य जड़ मानते हैं. कहते हैं कि 'मैं ऐसा जंगल चाहता हूँ जो लोगों की आवश्यकतायें पूरी करे. जंगलों में सब्जियाँ भी पैदा की जाय जो पूरे उत्तराखंड में पहुँचे, बिना पेट क्या होगा? सेमिनार गोष्ठी में पेट भरता है क्या?'

अपने अनूठे प्रयास को लोगों तक पहुँचाने के लिये उन्होंने गौचर से दिल्ली तक 28 दिन की पदयात्रा भी की है. जिसमें जनता को उन्होंने मिश्रित वन की अवधारणा अपने प्रयोग के आधार पर बताई. इस पदयात्रा के माध्यम से उन्होंने उत्तराखण्ड क्षेत्र की हरियाली बढ़ाने, कार्बन डाई ऑक्साइड कम करने और ऑक्सीजन का स्तर बढ़ाने के लिये रॉयल्टी देने की माँग भी रखी. 'जंगली' का यह प्रयोग है. भिन्न-भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में जाकर वहाँ के वातावरण का अध्ययन और वहाँ की पादप प्रजातियों को अपने जंगल में उगाने का उनका क्रम जारी है. उल्लेखनीय बात यह भी है कि 'जंगली' की देखा-देखी अब अन्य लोग भी उनका प्रयोग दोहराने लगे हैं.

(लेखक हाल ही में रा. स्ना. म. वि. पिथौरागढ़ से प्राध्यापक पद से रिटायर हुए हैं.)

सच्चिदानन्द भारती

सामुहिक आत्म विश्वास की वापसी

बात 25 साल पहले की है, जब उत्तरांचल के पौड़ी और अल्मोड़ा जिले की सीमा पर स्थित उफरैंखाल का एक युवक सच्चिदानन्द ढौंढियाल गोपेश्वर महाविद्यालय से बी.एड. करने के बाद उफरैंखाल इण्टर कालेज में अध्यापक नियुक्त हुआ. गोपेश्वर उस दौरान चल रहे चिपको आन्दोलन का मुख्य केन्द्र था. उत्तराखण्ड के अन्य कई युवकों की तरह सच्चिदानन्द को भी चिपको आन्दोलन ने बहुत गहरे प्रभावित किया और इस युवक ने अपने गांव लौट कर कुछ नया करने का निश्चय किया. यही दृढ़ निश्चय एक ऐसे प्रयास के जन्म का कारण बना है, जो आज पौड़ी, अल्मोड़ा और चमोली जिलों की सीमा में फैली दूधातोली पवर्त श्रृंखला की शिराओं में हरियाली और पानी तथा आत्मविश्वास बन कर दौड़ रहा है और घास, लकड़ी तथा पानी के प्रबन्धन की परम्परागत किंतु लुप्त हो चुकी विधाओं को फिर से जिंदा करने के लिए लोकप्रियता हासिल कर रहा है.

उफरैंखाल क्षेत्र में बांज, काफल, उतीस, अयार जैसी स्थानीय प्रजातियों के वृक्षारोपण से वापस लौटी हरियाली ने गाड गंगा समेत अनेक मृत धाराओं के प्राण लौटा दिए हैं. गांवों के जलस्रोतों में पानी की मात्रा बढ़ गई है. कुछेक स्थानों पर नए जलस्रोत फूटे हैं, जो वर्ष भर पानी दे रहे हैं. मवेशियों के लिए चारे और जलावनी लकड़ी का संकट कम हुआ है. इससे भी उल्लेखनीय बात यह है कि ग्रामीणों का आत्मविश्वास लौटा है. पर्वतीय जनजीवन की विशेषता रही सामूहिकता की भावना पुनर्जीवित हुई है. यह अभियान पौड़ी अल्मोड़ा जिले के 27 गांवों में लोकप्रियता हासिल कर चुका है. भारती की इच्छा इसे उत्तरांचल भर में विस्तार देने की है.

सच्चिदानन्द भारती बताते हैं कि प्रारम्भ में वे अकेले ही स्कूल की छुट्टी के दिन आस-पास के गांवों में जाकर लोगों को पेड़ लगाने, रास्तों की मरम्मत करने, दु:ख-सुख में एक दूसरे की मदद के लिए प्रेरित करते थे. बाद में महसूस हुआ कि इस कार्य को संस्थागत रूप दिया जाना चाहिए. इस तरह जन्म हुआ 'दूधातोली लोक विकास संस्थान' का. संस्था ने उफरैंखाल की सूखी पहाड़ियों में स्थानीय प्रजातियों के पेड़ लगाने आरम्भ किए और वर्षा का पानी रोकने के लिए छोटे-छोटे तालाब बनाए. तालाब की मेड़ों पर बांज, उतीस, काफल जैसे पानी देने वाले वृक्षों और घास का रोपण किया. भारती कहते हैं 'शुरू के एक-दो वर्षों में वर्षा का पानी जल तलइयों में ठहरता ही नहीं था. वर्षों की प्यासी धरती सारा पानी सोख लेती थी. तीन वर्ष बाद जब धरती तृप्त हुई तो गाड की सूखी जलधारा में पानी की धार बहने लगी. अब तो भीषण सूखे में गाड में पानी की धारा बहती रहती है.' भारती ने इस जलधारा को गाड गंगा नाम दिया है. गाड उनके गांव का नाम है और यह जलधारा गांव के उत्तर में बहती है.

भारती के प्रयोग की उल्लेखनीय बात यह है कि उन्होंने आसमान से बरसने वाली अथाह जलराशि को सीधे बह कर नदियों में नहीं जाने दिया. जगह-जगह छोटे-छोटे तालाब बना कर वर्षा का पानी एकत्र किया. गाड क्षेत्र में उल्लेखनीय परिणाम आने के बाद आस-पास के 27 गांवों ने भी इस प्रयोग को अपना लिया. इन गांवों में आज सात हजार से अधिक जल तलइयाँ प्रत्येक मौसम में पानी से लबालब भरी रहती हैं. इसका दूसरा फायदा यह हुआ है कि जंगल में नमी बढ़ने से घास और पेड़-पौधों का विकास तेजी से हो रहा है. जंगल का प्राकृतिक जीवन लौटने से अनेक वन्यजीवों ने इसे अपनी शरणस्थली के रूप में अपना लिया है. भारती कहते हैं कि '1995 में जब पूरे उत्तराखण्ड के जंगल धू-धू कर जल उठे थे और आग पर काबू पाने में वन विभाग नाकाम हो गया था इस क्षेत्र में 133 गांवों के जंगल बचे रहे. दावाग्नि से बचने के लिए सैंकड़ों प्रजातियों के पशु-पक्षियों ने यहाँ शरण ली थी.'

उफरैंखाल के सफल प्रयोग का मूल पकड़ने का कोशिश की जाए तो वहाँ एकदम सामान्य सी बातें नजर आती हैं. मसलन भारती खुद कहते हैं 'मैंने नया कुछ नहीं किया. समाज में जो कुछ रचनात्मक और सकारात्मक था और एकाधिक कारणों से समाप्त हो रहा था, उसे फिर से अपनाने के लिए मैंने लोगों को प्रेरित भर किया. एक बार आत्मविश्वास लौटने की देर थी, फिर सब स्वत: चलने लगा.'

पानी और वन संरक्षण के बाद भारती अब गांवों के पुनर्निमाण के कार्य में जुटे हुए हैं. एक नए अभियान 'ग्राम देवता' के साथ. इस अभियान के बारे में वे कहते हैं 'अभियान का उद्देश्य गांवों का पुनर्निमाण करना है. गांवों से गायब हो रही सामूहिकता की भावना, प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण इस्तेमाल और संरक्षण की भूली-बिसरी प्रथाओं को दोबारा स्थापित करना है.' बसंत पंचमी, 2001 से आरम्भ हुए 'ग्राम देवता' अभियान में रविवार या किसी भी छुट्टी के दिन प्रत्येक परिवार का एक सदस्य रास्तों की मरम्मत, मंदिर और जलस्रोतों की सफाई इत्यादि के कार्य में श्रमदान करता है. भारती बताते हैं 'ग्राम देवता' का अर्थ पूजा पाठ या देवता को धूप सुँघाने से नहीं है. गांव के जंगल, रास्ते, जलस्रोत गांव के देवता है इसलिए प्रत्येक ग्रामवासी को महीने में एक दिन उनकी पूजा अनिवार्य रूप से करनी है. जो किसी कारणवश श्रमदान नहीं कर सकता वह एक दिन का वेतन इस कार्य हेतु प्रदान करता है. यह नया कार्यक्रम भी उफरैंखाल क्षेत्र में काफी लोकप्रिय हो रहा है.

अपने कर्मक्षेत्र के लिए आपका सपना क्या है? यह पूछने भारती कहते हैं 'दूधातोली का यह क्षेत्र दूध का घर बने, कोई सूखी रोटी न खाए, सब्जी हो. बच्चे पढ़े-लिखे और स्वस्थ्य हों. पलायन से खाली हो चुके गांवों में जीवन दोबारा हिलोरें ले, चारों तरफ आनन्द हो, बस.' आशा की जानी चाहिए कि भारती और उफरैंखाल के लोगों के जज्बे की लीक निरन्तर लम्बी होती जायेगी. उफरैंखाल ही नहीं, उत्तरांचल के सोलह हजार गांव भारती के सपने को पूरा करने का बाहक बनेंगे. प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन के लिए किसी और का मुँह ताकने की अभ्यस्त हो चुकी सरकारी एजंसियों को अपनी धरती और अपने लोगों की तरफ देखने की मति आएगी और भारती के प्रयासों को उत्तरांचल भर में विस्तार देने की कोई ठोस नीति शीघ्र सामने आएगी.

• पूरन बिष्ट

हिमान्तर पहाड़ का प्रकाशन है. इसका हर अंक उत्तराखण्ड की किसी एक समस्या पर केन्द्रित होता है. कोशिश होगी कि समस्या के प्रत्येक पक्ष की पड़ताल और इन पर सार्थक बहस-बातचीत की शुरूआत हो. यह प्रक्रिया कैसे और अधिक सार्थक हो सकती है, इस पर पाठकों की प्रतिक्रिया का हार्दिक स्वागत है.